सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

मवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 54 : अंक : 10
जनवरी 2022

प्रकाशन तिथि : 01.01.2022

मूल्य : एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 380/-

अमृतकण

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टते तमाहुः परमां गतिम्।।

जब पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ स्थिर होती है और बुद्धि विचलित नहीं होती तब तब इसी स्थिति को परमगति कहकर पुकारा जाता है।

ता योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।

अप्रमतस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्यौ।।

उपरोक्त परमगति को प्राप्त करके ही ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है। यही योग अवस्था कही जाती है।

जब योगी इन्द्रियों की सब धारणाओं को एकाग्र करके अन्तर्मुख होकर आत्मा में रमण करता है तभी वह सिद्धावस्था में पहुँच पाता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येस्य हृदि श्रिताः।

अथ मर्त्योमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।

जब सब कामनाऐं छूट जाती है जो इस जीव के हृदय में स्थित है तब यह मरणधर्मा मनुष्य सचमुच अमृत हो जाता है और यह अमृत अवस्था ही उसको ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु-

र्न लिप्यते चाक्षु र्बाह्यदोषैः।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा-

न लिप्यते लोक दुःखेन बाह्यः।।

जैसे सूर्य सारे संसार का नेत्र है फिर भी संसार के बाह्य दोषों से अलग रहता है, उनसे दूषित नहीं होता इसी प्रकार सच्चिदानंद परमात्मा सब भूतों के अन्दर रहता हुआ भी लिप्त नहीं होता, अपितु वह इनसे अछूता ही बना रहता है। ऐसे पावनतम् प्रभु को प्राप्त करके हम क्यों न अपने को पावनतम् बनायें।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 54 जनवरी 2022 अंक : 10

तस्माद्योगी भवार्जुन

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चधिको योगा तस्माद्योगी भावार्जुन।।

अर्थात् – हे अर्जुन ! तपस्वी, ज्ञानी और कर्म काण्डियों की अपेक्षा योगी जन ही अधिक महत्त्व वाले होते हैं इसलिए तू योगी बन जा।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- *योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- *डॉ. विजय सिंह*	10
4.	प्रश्नोपनिषद-ऋषि कबन्धी के प्रश्न - *पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय*	13
5.	लीला धारी की लीलाएँ...."चतुर्थ"- *श्री जगदीश राए बंसल*	15
6.	बौद्ध योगाचार्य बुद्धघोष- *डॉ. बालमुकन्द*	19
7.	एकातत्त्वाभ्यास- *श्री वासुदेव शर्मा*	23
8.	2022-नववर्ष के अभिनन्दन में- *द्वारका प्रसाद शर्मा*	27
9.	योगासन और उनके लाभ- *श्री वीरेन्द्र स्वरूप*	29
10.	गुरुजी योग बांटने आया- *अशोक दिग्विजय*	33
11.	संयम और शान्ति- *अन्तु राम यादव*	34
12.	महायोगी ऋषि माण्डव्य- *श्रीमती राजकुमारी त्रिखा*	38
13.	स्वरूप ज्ञान का महत्व- *पं. रामनरेश मिश्र शास्त्री*	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 380.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1000.00

हमारा विशेष लेख–

शक्ति संरक्षण के उपाय

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने समय समय पर 'सिद्धयोग' में प्रकाशित होनें वाले अपने लेखों में 'सिद्धयोग और साधनयोग' के द्वारा प्राप्त होने वाली शक्ति का वर्णन किया है। यौगिक–साधनाओं में शक्ति प्राप्त करने के प्रकार तो बहुत हैं किन्तु यह बात कोई – कोई बिरला अधिकारी ही सोच पाता है कि वह प्राप्त की हुई शक्ति को संभाल ले और वह उन नियमों पर आचरण करे जिनके पालन करने से शक्ति की रक्षा की जा सके और उसके साथ–साथ उसका संवर्धन भी हो सके।

एक योगाभ्यास करने वाला योगी यदि अपने नियमों का पूरी तरह पालन करता है तो वह उसका अभ्यास ही उसका गुरु बन जाता है। तथा उत्तरोत्तर भूमिकाएँ उसके सामने प्रगट होती रहती हैं। योग–दर्शन के साधनपाद के प्रारम्भ में भगवान पतंजलि देव ने क्रियायोग का जो उपदेश किया है। वह इस प्रकार है :–

तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।

अर्थात् तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये तीनों साधनायें क्रिया योग की हैं। इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी महाराज ने भाष्य की पंक्तियाँ इस प्रकार लिखी हैं :–

ना तपस्विनो योगः सिद्यति, अनादि–कर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषय–जाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः सम्भेदमापद्यत इति तपस उपादानं, तच्च चित्तप्रसादन मबाधमानमनेनासेव्यमिति मन्यते, स्वाध्यायः = प्रणवादिपवित्राणां जपः मोक्षशास्त्राध्ययनं वा ,ईश्वरप्रणिधानं = सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा।

अर्थात् जो तपस्वी नहीं है उसे योग सिद्ध नहीं होता। उसका कारण है अनादि काल से कर्म, क्लेश, वासना से भरा चित्त अनेक प्रकार के विषय जाल को उपस्थित करता है इस प्रकार की अशुद्धि तप के बिना दूर नहीं की जा सकती। और वह तप जो है जिसमें चित्त पर कोई भार न पड़े और क्लेशित न हो अर्थात् चित्त जिस तप के करने में प्रसन्न रहे कोई बाधा उपस्थित न हो वही तप धारण करना चाहिये। प्रणवादि ईश्वर के पवित्र नामों का जप करना व मुक्तिदाता शास्त्रों का पाठ करना स्वाध्याय कहलाता है। परमगुरु ईश्वर को सर्वकर्मार्पण कर देना या उनके फलों का त्याग कर देना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। इस क्रिया योग की साधना परमार्थान्वेषी साधक के लिये बहुत ही आवश्यक है। जो साधक क्रियायोग के नियमों का पालन न करके अपनी साधना को बढ़ा लेना चाहता है, यह उसका मानस भ्रम है।

मैं आज के अपने इस लेख में तप, स्वाध्याय आदि के क्रम को सभी साधकों के हितार्थ स्पष्टीकरण के साथ समझा देना चाहता हूँ। जिसको अपनाकर प्रत्येक साधक पूर्णरूपेण अपना हित साधन कर सके।

गीता में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने तप का तीन प्रकार से उल्लेख किया है जो सभी के लिये परमोपायदेय है।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं,शोचमार्जवम्।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं तप उच्यते।।

शारीरिक तप का वर्णन उपरोक्त शब्दों में अपने मुखारविन्द से भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने किया है।

शारीरिक तप: – तपस्या करने वाले साधकों को चाहिए, शरीर को पीड़ा देने वाले कष्टप्रद घोर तपों को न करे। भगवान की जिस प्रकार की आज्ञा है, वही तप श्रेष्ठ एवं परम कल्याणकारी है। भगवान श्रीकृष्ण ने उपरोक्त श्लोक में शारीरिक तप का इस प्रकार वर्णन किया है।

देव, द्विज (अर्थात् ब्राह्मण) गुरु एवं बुद्धिमान लोगों का पूजन करना एवं बाह्याभ्यान्तर सभी प्रकार की शुद्धि रखना और इसके साथ–साथ विनम्र रहना, ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना तथा अहिंसा धर्म का पूरा–पूरा पालन करना, ये ही परमोत्कृष्ट शारीरिक तप है। अपने इस लेख के प्रारम्भ में तप का लक्षण करते हुए " **द्वन्द्व सहनं तपः** " कहकर हमने तप की परिभाषा लिखी है। द्वन्द्व सहन का अर्थ है– सर्दी, गर्मी, भूख–प्यास के जोड़े को सहन करना। जो मनुष्य देव, द्विज, गुरु प्राज्ञादि का पूजन करता है वह अपने स्वार्थ को उनके स्वार्थ में निहित कर देता है। उसकी अपनी इच्छा की प्रधानता खत्म हो जाती है और उनकी इच्छा की प्रधानता सामने आ जाती है, वह अपनी खुदी को खोकर उन लोगों की इच्छा के अनुसार चलने की आदत डाल लेता है। यद्यपि उसका अपना अहं किसी की सेवा करने की आज्ञा नहीं देता, फिर भी देव, द्विज, गुरु, प्राज्ञादि के पूजन में साधक अपना आपा न्यौछावर करता है, यह उसका द्वन्द्व सहन है। शुद्धि रखना, ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना और मनसावाचा – कर्मणा किसी को भी दुःख न देना, यह सभी सिद्धान्त द्वन्द्व सहन के सिद्धांत हैं। इसलिए जो उपरोक्त सिद्धांतों पर चलने का प्रयत्न करता है वह अवश्य द्वन्द्वों को सहन करने वाला परम तपस्वी है। इससे आगे के दो श्लोकों के अन्दर भी भगवान श्रीकृष्ण ने वाङ्मय और मानस तप का वर्णन किया है :–

अनुद्वेगकरं वाक्यं, सत्यंप्रियहितं च यत्।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मयं तप उच्यते।।

मनः प्रसादः सौमयत्वं, मौनमात्मविनिग्रहः।

भावसंशुद्धिरित्येत, त्तपोमानसमुच्यते।।

वाङ्मय तपः– साधक को चाहिए कि इतनी मीठी व पवित्र वाणी बोले जिससे सुनने वाले का हृदय प्रसन्नता से नाच उठे, किन्तु ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि मनुष्य सत्य तो बोले किन्तु उसके भाषण में कटुता भरी हुई हो। यदि किसी मनुष्य ने सत्य तो कहा किन्तु उसका कहना कटुता पूर्ण है जो वाणी दूसरे के हृदय को वर्षों तक दुःख देती रहे ऐसा सत्य हिंसक सत्य

है। हमारा शास्त्रीय सिद्धांत है कि–

सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः।।

अर्थात् सत्य बोले, किन्तु प्यारा सत्य बोले अप्रिय सत्य न बोले इसके अतिरिक्त किसी के प्रभाव में आकर के ठकुर सुहाती उक्ति के अनुसार प्यारा झूठ भी न बोले! यह सनातन धर्म कहलाता है। इसलिए यदि मनुष्य अपने जीवन में अनुद्वेगकर सत्य बोलने की आदत डाल लेता है तो वह परम तपस्वी है। इसके साथ–साथ स्वाध्याय का अभ्यास करना भी वाङ्मय तप है। स्वाध्याय का अर्थ हम अपने पहले कई लेखों में बतला भी चुके हैं।

प्रणिवादिपवित्राणां जपः, मोक्षशास्त्राध्ययनं व स्वाध्यायः।

अर्थात् ओंकार आदि परमात्मा के पवित्र नामों का जप करना अथवा मुक्तिदाता शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय के अंतरंग भेद कई प्रकार के हैं, जो कि अभ्यासी महात्माओं के अनुभूत हैं एवं परिणाम में सुख के दाता हैं। ओंकारादि परमात्मा के पवित्र नामों का जप पहले पहले जीभ से आरम्भ किया जाता है, जीभ से जपते–जपते यही मंत्र मन में प्रवेश कर जाता है। इसको मानस जप कहते हैं। यही जप कालान्तर में बुद्धिगत हो जाता है और कारण शरीर में इसका संस्परण होने लगता है। और कालान्तर में यही जप साधक को स्फुट प्रज्ञा लोक तक ले जाया करता है जिससे साधक को सहज समाधि प्राप्त हो जाती है। वैसे हमारा शास्त्रीय नियम एक और भी है और वह यह है :–

स्वाध्यायात् योगमासीत योगात् स्वाध्याय मामनेत्।

स्वाध्याययोग सम्पत्या परमात्माप्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय का अभ्यास करता हुआ योगी, योग को प्राप्त करे। योग अर्थात् ध्यान समाधि हो जाने के बाद स्वाध्याय का मनन करे। स्वाध्याय और योग इन दोनों का निरन्तर अभ्यास कर लेने के बाद परमात्मा का स्वतः ही प्रकाश हो जाया करता है। साधकों के अभ्यास के लिए एक और भी नियम है जिसका उपदेश हमारे आचार्यों ने शास्त्रों में किया है। वह इस प्रकार से है :–

स्वदेहमरणिंकृत्वा प्रणवं, चोत्तरारणिम्।

ध्याननिर्मथनमअभ्यासात्, देवं पश्येन्निगूढवत्।।

अर्थात् अपने शरीर को अरिण बनाकर के और प्रणव को उत्तरारणि बनाकर के ध्याननिर्मथन के अभ्यास से छिपे हुए को देखे। प्रायः हम अपने सत्संगी बच्चों में प्रचार करते हुए कहा करते हैं कि जो लोग अनुष्ठान करना चाहते हैं वह लोग अपनी दिनचर्या को बना लें।

साधकों के लिए पालनीय नियम–

प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाये अर्थात् विरक्त साधकों को रात्रि के तीन बजे और गृहस्थ साधकों को कम से कम चार बजे उठ जाना चाहिये। चार बजे उठ जाने के बाद थोड़ा जलपान करके शौच जाना चाहिए। जल पीकर शौच जाने से उदर का मल

साफ हो जाया करते हैं शौच जाने के बाद दन्तधावन करें। दन्तधावन करने के बाद में सवा घण्टे तक प्रत्येक साधक को नित्य योगिक व्यायाम, जीवनतत्त्व साधन जिसकी पुस्तक हमारे आश्रम से प्रकाशित हुई है उसमें लिखी विधि के अनुसार करना चाहिये। उसके बाद प्रत्येक साधक को 1 घण्टा मंत्र जाप एवं कम से कम आधा घण्टा ध्यान में बैठना चाहिये। उसके बाद नैत्यिक खान पान अल्पाहार लेने के बाद अपने अन्य दैनिक कार्य करें, दफ्तर जाये, व्यापार करें। उसके बाद सायंकाल भोजन के बाद 1 घण्टा मंत्र का जाप करें और आधा घण्टा ध्यान करें और उसके बाद सो जाए। प्रत्येक साधक को अपना आहार सात्विक ही रखना चाहिए। रात्रि में योगनिद्रा की विधि से सो जाएं और सुबह 4 बजे उठ जाय ताकि रात्रि मे उसका योगध्यान स्वाभाविक होता रहे। इस प्रकार इस लेख के अन्दर लिखे हुए उपायों को अपना कर जो साधना को बढ़ायेंगे। उनके अन्दर शक्ति संवर्धन अवश्य-अवश्य होगा।

छाँड़ि मन हरि विमुखन को संग।

जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग।।
कहा होत पयपान कराये, विष नहीं तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगाये, श्वान न्हवाये गंग।।
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खहि छंग।।
पाहन पतित बान नहीं बेधत, रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजौ रंग।।

-भक्त सूरदास

सम्पादकीय–

नववर्ष मंगलमय व सुखमय हो !

आचार्य (डा०) रामलाल ब्रह्मचारी

ईसवीय वर्ष 2021 का अवसान हो गया है, नया वर्ष 2022 प्रारम्भ हो गया है। पिछला वर्ष सारी दुनिया के लिये अत्यन्त भयावह और कष्टप्रद रहा है इसे सभी जानते हैं। कोरोना महामारी ने लाखों लोगों को कालकवलित कर लिया है। मनुष्य के जीवन की धारा छिन्न–भिन्न हो गई। जीवन सभी का प्रभावित हुआ है। असामान्य जीवन बन गया है मनुष्य का। सपनों पर पानी फिर गया। अंग्रेजी की कहावत– Man proposes God disposes चरितार्थ हो गयी। अभी तक महामारी का हाहाकार सुनाई दे रहा है। अब सुनने में आया है कि इसका Vaccine टीका खोज लिया गया है। मनुष्य को बचने की आशा की किरण दिखाई देने लगी है।

मानव देह क्षण भंगुर है इसे तो नियमतः सभी को त्यागना ही पड़ता है। वस्तुतः जीवन और मृत्यु भगवान् के हाथ में है। श्रीमद्‌भगवद् गीता में भगवान् कहते हैं–

अमृतं चैव मृत्युश्च सद्सदचाहभुर्जुन।

जीवों का अमृतत्व और मृत्यु दोनों मैं ही हूँ। इस विषय में उपनिषद् कहते हैं–

' **मृत्योर्मामृतं गमय** ' हे मनुष्य तुम मृत्यु कीओर नहीं अमृतत्व की ओर चलो। अमृतत्व को प्राप्त करने के लिये मनुष्य को प्राण की उपासना करनी होती है। प्राण साधना अध्यात्म की रीढ़ है। साँस तो हर प्राणी लेता है किन्तु मन को भावना को जोड़कर इसमें चेतना का संचार करने पर यही साधना बन जाती है और साधक शनैः शनैः अमृतत्व की ओर बढ़ जाता है। यह योग मार्ग का विषय है, साधना का विषय है। गीता में भगवान् कहते हैं– हे अर्जुन ! अमृत और मृत्यु मैं ही हूँ।

जो प्राण साधना के रहस्य को समझ कर इसकी साधना करता है वह अमरत्व को प्राप्त होता है। मनुष्य साधना से विमुख रहता है उसे आत्मज्ञान की पिपासा ही नहीं होती है वह दुनिया से आत्मज्ञान के बिना ही विदा हो जाता है। मेरे गुरुदेव भगवान् अपने योग प्रचार के कार्यक्रमों में योगी भतृहरि जी का एक श्लोक प्रायः ही उद्‌बोधन में कहा करते थे , वह निम्न है–

आदित्यस्य गतागतेरहरहः संक्षीमते जीवितम्
व्यापारैबहु कार्यभार गुरुभिर्कालो न विज्ञायते
ज्ञात्वा जन्मजरा विपत्ति मरणं, त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरां उन्मत्तभूतं जगत्।

इसका तात्पर्य है कि प्रतिदिन सूर्य उदय होता है और शाम को अस्त हो जाता है। इस प्रकार से हमारी आयु का एक–एक दिन घट रहा है। हम लोग अपने काम धन्धों में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि समय का पता ही नहीं चलता। रोज हम लोगों को यम–सदन की ओर जाते देख

रहे हैं किन्तु हमें मृत्यु का कोई भय नहीं हो रहा है।

मनुष्य मोह एवं प्रमादरूपी मदिरा को पीकर उन्मत्त (पागल) हो रहा है। इस प्रकार से हमारे गुरुदेव जी हर प्रवचन में अपने बच्चों को चेतावनी दिया करते थे। अस्तु:

यह संसार दुखों का घर कहा गया है – गीता में श्रीभगवान् कहते हैं –

मामुपेत्य पुनर्जन्म दु:खालयमशाश्वतम्।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परभाम्गता:।।

– गीता – 8/15

अर्थात् यह संसार दु:खों का घर है और नश्वर भी है। जो योगी मुझे प्राप्त कर लेता है वह नश्वर संसार को सदा के लिये छोड़कर मुझे प्राप्त कर लेता है और उसे मुक्ति रूपी परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

अज्ञानी दु:ख को ही सुख मान बैठता है। दु:ख उठाते–उठाते उस दु:ख को ही सुख मानकर शाश्वत सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता। किन्तु जो सात्विक पुरुष है, विवेक सम्पन्न है वह दु:ख को हेय (त्याज्य) मानकर इसके परिहार का उपाय ढूँढ़ लेता है। दु:ख के सदा के लिये निवारण का उपाय विवेकख्याति है, पतंजलि भगवान् कहते हैं–

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय:

– योग सू. 2/26

अर्थात् अविद्या से पूर्ण रहित जो विवेकख्याति है वही दु:ख के पूर्ण निवारण का उपाय है। इस कारण से भगवान् पतंजलि जी कहते हैं कि आगे कल को आने वाला जो दु:ख है वह त्याज्य है दूर करने योग्य है। सूत्र दिया है–

हेयम् दु:खमनागतम्

– योग सू. 2/16

अनागत (भविष्य में आने वाला) जो दु:ख है उसका निवारण किया जाना चाहिए। उसको हटा देना चाहिए। विवेकी पुरुष के लिये संसार दु:खरुप ही है अत: कहा है –

सर्वमेव दु:खम् विवेकिन:

– योग सू.

विवेकी के लिए दु:ख ही दु:ख है सुख तो केवल स्वरूपस्थिति अर्थात् मुक्ति में ही है। इसलिये योगी को निरन्तर विवेकख्याति की प्राप्ति का प्रयत्न करते ही रहना चाहिए।

जिस प्रकार से **रूई का कण** आँख में गिर जाने पर व्यक्ति छटपटा जाता है इसी प्रकार से विवेकी व्यक्ति भी दु:ख के तुरन्त निवारण का उपाय कर लेता है।

अत: आवश्यकता है साधना में विश्वास तथा शुद्ध भावना की। आस्तिक व्यक्ति विश्वास करता है परमात्मा के अस्तित्व में महापुरुषों के वाक्यों में तथा शास्त्र प्रमाण में। गुरु एवं शास्त्र की आज्ञा–परमात्म प्राप्ति की है उसका प्रयास करना ही चाहिए।

भावना ही धारणा का रूप है और यह धारणा समाधि की आधार भित्ति होती है। अत:

साधक को चाहिए साधना के प्रति श्रद्धापूर्ण होकर साधना में लगा रहे। अश्रद्धा से किया गया तप व साधना से कोई फल न तो इस लोक में मिलता है न परलोक में। श्रद्धा विश्वास के विषय में संत तुलसीदास लिखते हैं–

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ

याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः– स्वान्तस्थमीश्वरम्।

मैं देवी पार्वती एवं भगवान् शिव को प्रणाम करता हूँ। जो श्रद्धा एवं विश्वास के प्रतीक हैं। इनकी कृपा के बिना सिद्ध गण भी अपने अन्तःकरण के ईश्वर को देख नहीं सकते।

आइये ! नव वर्ष की इस पावन बेला में श्रद्धायुक्त होकर लौकिक जीवन जीते हुये आत्मोत्थान के लिये कर्म करते रहें। आशा करें हम आगे सुनहरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

मैं अपने सभी सिद्धयोग के साधकों, पाठकों के उज्जवल जीवन की कामना करता हूँ। हमारे जीवन में आरोग्यता, सुख–समृद्धि, ध्यान में उन्नति और प्रसन्नता बनी रहे। इसी मंगल कामना के साथ।

जय सद्गुरुदेव जी की !

वेदान्त और नीति

इस प्रकार वेदान्त इस बात का उपदेश देता है कि 'अपनी या दूसरों की भी कभी हिंसा न करनी चाहिए। ईश्वर से कुछ भी भिन्न नहीं है।' वस्तुतः वेदान्त के अधिकारी तथा अनुबन्ध–चतुष्ट आदि पारिभाषिक शब्दों में नीति और उपदेश के सभी तत्व आ जाते हैं। धर्म के समस्त लक्षण भी वेदान्त में अन्तर्मुक्त हैं। कुछ लोगों का यह विचार है कि वेदान्त संन्यास मार्ग की ओर प्रवृत्त करता है। पर सच बात यह कि योगवासिष्ठादि वेदान्त ग्रन्थ हमें जीवन में कर्मठता का भी पाठ पढ़ाते हैं और कर्तव्य–पथ की ओर भी अग्रसर करते हैं।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

एकादश स्कन्ध के दूसरे अध्याय से लेकर पाँचवें अध्याय तक नौ योगेश्वरों द्वारा क्रमशः दिये गये आध्यात्मिक योग पूर्ण उपदेश का वर्णन किया गया है। भगवान ऋषभ जी के सौ पुत्र थे। जिसमें सबसे बड़े राजर्षि भरत जिनके नाम से भारतवर्ष यह देश कहलाता है जो पहले 'अजनाभवर्ष' कहा जाता था। शेष निन्यानवे में से नौ अधिपति हुये। इक्यासी कर्मकाण्ड के रचनाकार ब्राह्मण हो गये। बचे नौ सन्यासी हो गये। उनका नाम कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन था। वे परिपूर्ण योगी थे। उनके लिये कहीं रोक–टोक नहीं था। वे जहाँ चाहते चले जाते। देवता, सिद्ध, साध्य–गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर और नागों के लोक में तथा मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गौओं के स्थान में स्वछन्द विचरण करते थे। वे सभी जीवन– मुक्त महापुरुष थे।

अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्य-
गन्धर्वयक्षनर किन्नर नाग लोकान्।
मुक्ताश्चरन्ति मुनिचारण भूतनाथ-
विद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम्।। 23।।

–अ.2, स्क.11

जनक द्वारा किये जा रहे एक बड़े यज्ञ के अवसर पर नौ योगीश्वर विचरण करते हुये आ पहुँचे। विदेह राज ने यथायोग्य आसनों पर उन्हें बैठाकर प्रेमानन्द से उनकी विधिपूर्वक पूजा किया।

राजा विदेह (निमि) ने कहा– त्रिलोक पावन करने वाले योगीश्वरों ! हम आपसे पूछते हैं कि परमकल्याण का स्वरूप क्या है ? और उसका साधन क्या है?

पहले उन नौ योगीश्वरों में से कवि जी ने कहा– राजन ! भगवान ने सरल अज्ञानी जन को भी सुगमता से साक्षात् अपनी प्राप्ति के लिये जो उपाय बताया है, उसे ही भागवत धर्म समझो। इसके लिये शरीर से, वाणी से, मन से, बुद्धि से, अहंकार से अनेक जन्मों के संस्कार से बने स्वभाववश जो–जो करे, वह सब भगवान नारायण के लिये है, इस भाव से उन्हें समर्पण कर दे। ईश्वर से विमुख जनको, उनकी माया से अपने स्वरूप का विस्मरण हो गया है। इसके कारण मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ, इस प्रकार का भ्रम हो गया है। इस देहादि में अभिनिवेश, तन्मयता होने के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, रोग आदि अनेकों भय लगे हुए हैं। अतः अपने गुरु को ही परमाराध्य प्रियतम मानकर अनन्य भक्ति के द्वारा ईश्वर का भजन करना चाहिए।

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या- ,

दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं,
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा।। 37।।

अ.2, स्क.11

सच पूछो तो आत्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। विचारवान पुरुष को संकल्प–विकल्प करने वाले मन को रोकना चाहिये। ऐसा होते ही उसे अभयपद प्राप्त हो जायेगा। इस प्रकार जो प्रतिक्षण एक–एक वृत्ति द्वारा भगवान का भजन करता है। उसे भगवान प्रेममयी भक्ति, संसार से विरक्ति और भगवान के स्वरूप की स्फूर्ति देते हैं। यह सब प्राप्त कर परम शांति का अनुभव करता है।

राजा निमि ने पूछा– योगीश्वर ! कृपया भगवत्‌भक्त के लक्षण स्वभाव, अन्यों के साथ व्यवहार तथा क्या वार्ता करता है ? मुझे उपदेश करें।

अब दूसरे योगीश्वर हरि जी बोले–राजन ! भगवान् समस्त प्राणियों में आत्मारूप में विद्यमान हैं। जिसे सर्वभूत में भगवान ही दिखायी पड़ता हो, उन्हें ही अनुभव करता हो वही यथार्थतः भगवत् भक्त है। ऐसी सिद्ध दृष्टि वाला ही भगवान का परम प्रेमी उत्तम भागवत है।

जो भगवान् से प्रेम, उनके भक्तों से मैत्री, दुःखी और अज्ञानियों पर कृपा तथा भगवान द्रोहियों की उपेक्षा करने वाला है। वह मध्यम कोटि का भागवत है।

जो भगवान की मूर्ति आदि पूजा तो श्रद्धा से करता है, परन्तु उनके भक्तों तथा अन्य जीवों में सेवा भाव नहीं रखता। वह साधारण कोटि का भगवद्भक्त है।

देखो ! जो संसार धर्म (जन्म–मृत्यु, भूख प्यास आदि कष्ट) से पीड़ित होते हुये भी भगवान की स्मृति में इतना तन्मय रहता है कि कष्टों से पराभूत नहीं होता, वह उत्तम भागवत है। जिसके मन में विषय–भोग की इच्छा, कर्म–प्रवृत्ति तथा वासनाओं का उदय नहीं होता। वह उत्तम भागवत भगवान् वासुदेव में ही निवास करता है।

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः।। 50।।

–अ.2, स्क.11

विवशता से भी नामोच्चारण करने पर सम्पूर्ण पाप नष्ट करने वाले भगवान श्री हरि को सदैव स्मरण करते रहना चाहिए।

एकादश स्कन्ध के तीसरे अध्याय में माया, मायातीत होने का उपाय तथा ब्रह्म और कर्मयोग का निरूपण किया गया है।

राजा निमि ने पूछा– भगवन ! विष्णु भगवान की माया सभी को मोहित कर देती है अतः मैं उस माया का स्वरूप जानना चाहता हूँ। योगीश्वर ! आप लोगों की वाणी को सुन–सुनकर मेरे मनः ताप नष्ट हो रहे हैं अतः आप अपने उपदेश हमें सुनायें। अब तीसरे योगीश्वर अन्तरिक्ष जी ने कहा– राजन ! आदि पुरुष परमात्मा अपनी जिस शक्ति से सम्पूर्ण भूतों के कारण बनते हैं तथा उनके विषय–भोग तथा पंचभूतों के द्वारा नाना योनियाँ निर्मित करते हैं, उसी को माया कहते हैं।

पंचभूतात्मक शरीर में वही प्रवेश कर पहले मन फिर विभक्त हो दस इन्द्रियों के रूप में

विषयों के भोक्ता बन गये। देहाभिमानी जीव अर्न्तयामी द्वारा प्रकाशित विषयों का भोग करता हुआ आसक्त हो जाता है। शुभ कर्मो का फल सुख और अशुभ कर्मो का फल दुःख भोगता हुआ संसार में भटकता रहता है। यही भगवान की माया है। प्रलय काल में स्थूल सूक्ष्म में, सूक्ष्म कारण में तथा कारण अव्यक्त में लय करता है, यह भगवान की माया है। मन सात्विक अहंकार में प्रवेश कर जाता है। अहंकार महत्व में लीन हो जाता है। महतत्व प्रकृति में और प्रकृति ब्रह्म में लीन होती है। इसी प्रकार उल्टे क्रम में सृष्टि होती है। यह भगवान की सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाली त्रिगुणमयीमाया है। अब और आप क्या सुनना चाहते है ?

एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी।

त्रीवर्णा वर्णितास्माभिः किं भूयः श्रोतमिच्छसि।। 16।।

अं.3, स्कं.11

राजा निमि ने पूछा – भगवन् ! जो अपने मन को वश में नहीं कर पाये हैं, उन लोगों के लिये माया को पार करना बहुत कठिन है। ऐसी मोटी बुद्धि वाले किस अवलम्बन से माया को पार कर सकते हैं?

चौथे योगीश्वर प्रबुद्ध जी बोले – ऐसे लोगों को अपने कर्म फलों को देखना चाहिए। वे जिन विषयों में सुख खोजते हैं, उन्हें दुःख मिलता है। ऐसे लोगों को गुरुदेव की शरण लेनी चाहिए। गुरुदेव शब्द ब्रह्म और वेदों के पारदर्शी हों तथा साथ ही परब्रह्म में प्रतिष्ठित तत्व ज्ञानी भी हों, ताकि अपने अनुभव द्वारा रहस्य की बातों को बता सकें। उनका चित्त शाँत हो, व्यवहार के प्रपंच में विशेष प्रवृत्त न हों।

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।

शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्।।21।।

अं.3

जिज्ञाशु को चाहिए अपने गुरु को ही परम प्रियतम आत्मा और इष्टदेव माने। निष्कपट भाव से सेवा करे और उनके पास रहकर भगवान को प्राप्त कराने वाले भक्ति सम्बंधी साधनों का क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे। ऐसा करने से ही परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः।

अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदो हरिः।। 22।।

पहले शरीर, सन्तान आदि से मन को विरत करे। भागवत् भक्तों से प्रेम करें। तदनन्तर प्राणियों के प्रति दया, मैत्री और विनय की निष्कपट भाव से शिक्षा ग्रहण करें।

सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु।

दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेषवद्धा यथोचितम्।।23।।

अं. 3, स्कं.11

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

प्रश्नोपनिषद- ऋषि कबन्धी के प्रश्न

पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

तपस्या के बाद सत्संग का वह सुअवसर आ गया। सर्वप्रथम कत्य ऋषि के प्रपौत्र कबन्धी ने बड़े श्रद्धा के साथ विनम्रता पूर्वक सद्‌गुरु के सम्मुख प्रश्न रखते हुए कहा– प्रभो यह सम्पूर्ण चराचर जीव नाना रूपों में उत्पन्न होते हैं। इनका सुनिश्चित परम कारण कौन है– महर्षि ने प्रश्नों को दो खण्डों में बाँटकर प्रथम पर चर्चा करते हए सूर्य और चन्द्र के माध्यम से उनकी जिज्ञासा को शान्त करते हुए समस्त जीव के कल्याण रूपी वृत्ति से उत्तर दिया। महर्षि ने कहा– हे कात्यायन कबन्धी यह जिज्ञासा वेदों में भी है। इस जगत जीव को जब परमात्मा को उत्पन्न करने की इच्छा हुई, तो उस परमात्मा ने तप किया अर्थात् एक योजना निश्चित किया। जिससे सृष्टि के प्रारम्भ तप से रयि (समस्त भूत समुदाय) और प्राण यह एक जोड़ा उत्पन्न किया। परमात्मा का संकल्प था, कि ये जोड़े विभिन्न प्रकार की सृष्टि करेंगे। महर्षि ने जीव को जीवन प्रदान करने वाली सम्मष्टि जीवनी शक्ति को " प्राण " नाम दिया। शक्ति प्रकृति के स्थूल स्वरूप में समस्त पदार्थों में जीवन, स्थिति और यथा योग्य सामंजस्य आने की प्रक्रिया एवं स्थूल भूत समुदाय को रयि नाम दिया। यह रयि मनुष्य के भौतिक सुख वैभव और सम्पत्ति का ही स्वरूप है। जो प्राण रूपी जीवनी शक्ति से अनुप्राणित होकर कार्य करती है। महर्षि ने बड़े स्पष्ट रूप से बताया कि प्राण चेतन है तथा दूसरा रूप रयि शक्ति और आकृति है। शक्ति का अर्थ भूत समुदाय में विकास का क्रम तथा आकृति का तात्पर्य उनकी जैसी जिस प्रकार की आकृति हो। इन्हीं के संयोग से सृष्टि का समस्त कार्य सम्पन्न होता है। इसी को अग्नि और सोम के नाम से भी विदित है। महर्षि ने कहा– **" आदित्यो ह वै प्राणो रयिरे व चन्द्रमा रयिर्वा एतत सर्व यन्मूर्तचामूर्त च तस्मान्मूर्ति रेवः रयि। "** यह संसार प्राण और रयि के संयोग से ही बना है। इसलिए इसे पृथक करके नहीं बताया जा सकता है। किन्तु तात्विक रूप से यह सूर्य जो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है। यह ही प्राण है। क्योंकि इसी से भूत समुदाय को जीवन प्रदान करने वाली चेतना शक्ति की प्रधानता और अधिकता दिखाई पड़ता है। यह सूर्य शक्ति का घनीभूत स्वरूप है। इसी प्रकार चन्द्रमा रयि है। क्योंकि यह प्राणियों के स्थूल शरीर का पोषण चन्द्रमा की शक्ति को पाकर ही होता है। जीव समुदाय के शरीर में दोनों शक्तियाँ सूर्य और चन्द्र प्रत्येक अंग–प्रत्यंग में व्याप्त है। इसमें जीवनी शक्ति का संबंध सूर्य तथा जीव मे मांस, भेद, आदि जो स्थूल तत्व है उसका संबंध चन्द्र से है। वस्तुतः जब सूर्य उदय होता है तो समस्त भूत समुदाय (रयि) सक्रिय होकर अपनी–अपनी उर्जा के अनुसार कार्य करता है। क्योंकि सूर्य की किरण उन्हें अपने जाल में आबद्ध किये रहती है। इसी से जीव स्फूर्त रहता है। इसीलिए यह समस्त प्राणियों का प्राण है। जीव के शरीर में वैश्वानर के रूप में जो प्राण अन्न को पचाता है। वह सूर्य के अंश में शक्ति प्राप्त कर कार्य करता है। इसके अतिरिक्त भी जीव समुदाय के शरीर में अन्य

प्राण जैसे -- अपान, समान, व्यान और उदान तथा स्वयं प्राण भी पाँच रूपों में विभक्त होकर कार्य करता है। किन्तु सबके मूल में सूर्य की शक्ति का कार्य दिखता है। अभ पाचन के संबंध में गीता में भी कहा गया है कि --

अहं वैश्वा नरो भुत्वा प्राणिनां देहभाश्रितः।

प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। 15/14

महर्षि ने समस्त जीव की जिज्ञासा वृत्ति को ध्यान में रखते हुए ऋषि से कहा-- **विश्वरूपं हरिणं जात वेद सुं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।**

सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।।

हे ऋषियों सूर्य के गूढ़ रहस्य को जानने वालों का कहना है कि यह सम्पूर्ण विश्व के केन्द्र में विभिन्न आकृतियों रंगों में तपता हुआ अपने जाल मण्डल से सबको आच्छादित किये रहता है। यही जीवन ज्योति का मूल स्त्रोत है। सूर्य के न होने से समस्त लोकों की क्रियाएँ बन्द हो जाती है। ऐसा ही उपाख्यान सती नर्वदा का मिलता है। जब उसने अपने सतीत्व के प्रभाव से उदय होने ही नहीं दिया तब पृथ्वी लोक से लेकर देवलोक तक हाहाकार मच गया। पुनः देवी को प्रसन्न करने पर ही सूर्य देव का दर्शन हुआ। जिससे समस्त भूत समुदाय आहलादित हो उठा। यह वैश्वानर अग्नि एवं प्राण के रूप में सर्वत्र व्याप्त है। इसके समान जगत में दूसरा कोई जीवनी शक्ति नहीं है। यह संसार के भूत समुदाय के कार्य व्यापार को सञ्चालित और नियमित करता है। अनेकों प्रकार के व्यवहार को यह सिद्ध करता है। जैसे जगत में उष्णता, प्रकाश, जीवनी शक्ति , ऋतुपरिवर्तन तथा अन्य समस्त कार्य व्यापार एवं आवश्यकताओं की पूर्ति भौतिक रूप में भी करता है। सूर्य सृष्टि का जीवन दाता रूप में उदित होता है। शास्त्रों में सूर्य को ' प्रत्यक्ष देवो दिवाकरः ' कहा गया है। इसलिए हमारा सबका दायित्व है कि प्रातः स्नानोपरान्त सूर्य को अवश्य ही जल अर्ध रूप में नित्य दिया जाए। परम पूज्य डोंगरे जी महाराज ने गोरखपुर के भागवत कथा में बताया कि-- सूर्योदय से पूर्व ही व्यक्ति को स्नान कर लेना चाहिए। सूर्य के सम्मुख स्नानादि क्रिया करना उनका अपमान करने जैसा ही होता है।

(क्रमशः)

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

लीला धारी की लीलाएँ....

" चतुर्थ "

जगदीश राए बंसल " अधम "

(गतांङ्क से आगे)

" यहाँ पर मैं भी भोजन करता हूँ "

सरदार मन मोहन सिंह जी जब अमृतसर के स्टेट बैंक आफ इन्डिया के जी.एम. थे तब सैं. 23 डी. में अपनी कोठी बनवा रहे थे। जब उन्हें सै. 22 के सत्संग की ख्याति सुनी तो एक दिन श्रीमती जशवन्त कौर, मनोरमा जी से मिलने उनके आवास पर पधारी। भोजन ग्रहण करने का समय हो रहा था अत: मनोरमा जी ने उसे जल पान एव भोजन परोसने के लिए पूछा। सरदारनी जी ने कहा कि मैं किसी के घर जल पान व खाना नहीं लेती। थोड़ी ही देर बाद मैं (रघुनन्दन) कॉलिज से आया तो मैंने भी श्रीमती जशवन्त कौर जी को प्रभु प्रसाद ग्रहण करने का आग्रह किया, लेकिन बहन जी ने साफ मनाकर दिया। जब हम भोजन प्रसाद पा रहे थे तो हमने देखा कि बहन जी एक टक श्री प्रभु चरणों में मग्न है और नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है। कुछ समय उपरान्त जब वह सामान्य हुई तो सरस बाणी से बोल उठी कि मैं भी यहाँ भोजन प्रसाद पाऊँगी।

यह सुनकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी। मैंने भी प्रेम रस बिखेरते हुए जिज्ञासा की कि बहन जी पहले मनोरमा के आग्रह पर और फिर मेरे अनुरोध पर आपने भोजन लेने से मना कर दिया और अब आप स्वयं भोजन करने पर कैसे रजामन्द हुई ? श्रीमती जसवन्त कौर जी ने फरमाया कि बापू (श्री प्रभु जी राम लाल महाराज जी) ने अभी हमें बतलाया कि " यहाँ पर तो हम भी भोजन करते हैं, तो बेटी तू कैसे नहीं करेगी। " श्री कृपालु करूणा निकेतन प्रभु जी महाराज के ये प्रेम भरे वचन सुन कर हमारा मन श्री चरणों में निछावर हो गया। अब बहन जी ने बड़े प्यार नाल प्रभु प्रसाद ग्रहण किया। और अब जब कभी इस कुटिया में पधारती है, तो जो भी रूखा सूखा उपलब्ध होता है, बड़े आनन्द विभोर से स्वीकार करती है। कहती भी है कि:-

यह कर्म भूमि है काया मेरी, इससे भक्ति बढ़ती है।

जब सारी दुनिया यहाँ है झुकती, मेरी शक्ती बढ़ती है।।

ऐसा भोग लगायो प्रभु जी......

एक दिन रविवार को सत्संग के पश्चात अनुपम बेटी रसोई घर में भोजन बना रही थी और उसकी मम्मी मनोरमा भोजन खा रही थी। सारे परिवार के लिए जो डब्बा आटे से भरा था, उस सारे आटे की रोटियां मनोरमा समाप्त करने वाली थी तो बेटी अनुपम ने मुझ से कहा कि डैडी जी आप आटे का एक डब्बा पुन: भर दो मम्मी जी अभी खाना खा रही है। श्री रघुनन्दन ने

पूरा डब्बा आटा तैयार कर बेटी को दे दिया। मनोरमा जब दुसरी बार वाले आटे को भी समाप्त करने वाली थी तो अनुपम ने पुन: डैडी जी से कहा कि डैडी जी कमाल हो गया, मम्मी जी तो अभी रोटीयाँ खाए जा रही है, आप....। श्री रघुनन्दन जी ने कहा कि बेटी तू क्यों परेशान हो रही है ? यह तो तुम्हारी मम्मी के रूप में सर्व शक्तिमान श्री प्रभु जी तुम्हारे हाथों से बनाई रोटियों का भोग लगा रहे हैं।

तुम्हें विस्वास नहीं हो रहा हो तो ला एक रोटी मैं बेल कर देता हूँ, तू अपनी मम्मी को खिला देना। श्री रघुनन्दन जी ने श्री प्रभु जी का ध्यान करते–करते रोटी बेल कर तवे पर डाल दी और कहा बेटी अब तू इस रोटी को फूला कर अपनी मम्मी को परोस दे। यह रोटी खा कर मनोरमा जी का पेट भर गया तथा उसने और रोटी लेने से अनुपम बेटी को मना कर दिया। देखिए यह कैसी अद्भुत कृपा है पर ब्रह्म विश्वनाथ श्री प्रभु जी की। इसी प्रकार भक्त शिरोमणी आनन्द मई माँ के रूप में अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण जी महाराज ने 73 रोटियाँ खाई थी।

गजब है लीला आपकी, हर लीला में हैं आप।
रागी जो गाए मधुर राग, हरे साधक का सन्ताप।।

मासी जी को कृष्ण दर्शन एवं निरोगता

श्रीमती मनोरमा की मासी काफी वृद्ध थी, फिर भी वह प्रत्येक रविवार को बड़े उमंग के साथ जगत नियन्ता सर्वाधार प्रभु श्री राम लाल जी महाराज के सत्संग का लाभ उठाती। लेकिन अचानक किसी कलिष्ट संस्कार के कारण वह अधरंग के रोग से ग्रस्त हो गई और उसके लिए सत्संग में आना असम्भव हो गया। अत:उसने अपने सुपुत्र हरबंस लाल को रविवार के सत्सग में भेज कर आयोजकों एवं सत्संग मण्डल से गुहार लगाई कि मुझे असहाय जान कर अपने रविवार सत्संग के अतिरिक्त अपनी सुविधानुसार एक दिन हमारे घर पर सत्संग करने की कृपा करें। मासी की विवसता एवं प्यार भरी गुहार समझ कर सभी ने एक स्वर से सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी और उनके घर सत्संग करने का दिन एवं समय भी उसके बेटे को बता दिया।

गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा दीक्षित मासी जी ने सत्संग के दिन अनादि महा सिद्धयोगाधिपति दादा गुरु प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं करूणा सागर, भक्त वत्सल सिद्धों के सरदार गुरुदेव भगवान श्री चन्द्र मोहन जी महाराज तथा मोर मुकुट पीताम्बर धारी बाँके बिहारी भगवान श्री कृष्ण जी महाराज के स्वरूपों को सुन्दर–सुन्दर फूलों से सजवा रखा था। भव्य सत्संग के पश्चात, देवलोक में गाई जाने वाली दिव्य आरती होते ही प्रभु कृपा से श्रीमती मनोरमा समाधिस्थ हो गई। कई साधकों को भगवान श्री कृष्ण जी के बाल रूप में ठूमक–ठूमक चलते हुए के दर्शन हुए। मासी जी को समाधिस्थ मनोरमा द्वारा श्री प्रभु चरणों से पुष्प प्रसाद मिला। चमत्कार ! महान चमत्कार ! काल चक्र,युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले त्रयम्बक जी के श्री चरणों का पुष्प प्रसाद ग्रहण करते ही मासीजी के अधरंग ने करवट लेनी प्रारम्भ कर दी। अन्ततोगत्वा मासी जी पूर्णतया स्वस्थ हो गई।

जब चैन दवा से ना पड़े,तो चैन दुआ से पड़ती है।
जब ऐसे सद्‌गुरु मिल जाऐं, तो बात खुदा से होती है।।

श्री प्रभु जी द्वारा शंका समाधान

यह सर्व भौम अकाट्य सत्य सन् 1986 की है। रविवार को सत्संग के पश्चात प्रिय पुत्री अनुपम जिज्ञासा की कि डैडी जी कई दिनों से एक शंका मुझे बार–बार कचोटे जा रही है कि श्री प्रभु जी का ग्रहस्थ स्वरूप और वर्तमान वाले जटाधारी स्वरूप की शक्लें परस्पर मिलती नहीं हैं, तो हम दोनों को एक कैसे मानें ? मैंने कहा बेटी मेरी अब की शक्ल और शादी से पहले की शक्ल क्या आपस में मिलती है ? बेटी बोली कि डैडी जी, कुछ न कुछ समानता तो अवश्य है। लेकिन श्री प्रभु जी की शक्लें तो एक दम अतुलनीय हैं। मैंने कहा कि बेटी इस शंका का निवारण तो श्री प्रभु जी के अतिरिक्त सम्भव ही नहीं है।

पश्चात त्रिकाल दर्शी अन्तर्यामी श्री प्रभु जी महाराज ने अपनी लाड़ली अनुपम को ध्यानास्थ कर दिया। अनुपम की " भस्त्रिका " बड़ी तेज चलने लगी, नेत्रों से धाराऐं बहने लगी। वह त्राटक समाधि में श्री प्रभु जी सन्मुख देर तक बैठी रही। जब योगिनी अनुपम बेटी की समाधि खुली तो उसने बतलाया कि श्री प्रभु जी ने मुझे अपनी गोद में लिटा लिया– और प्रगाढ़ लाड़ प्यार किया। फिर प्रभु जी ने मुझे अपने मुख की ओर देखने को कहा। देखते ही देखते श्री प्रभु जी ने अपने ग्रहस्थ स्वरूप को जटाधारी रूप में बदल लिया। इस प्रकार श्री प्रभुजी ने अपना ओजस्वी स्वरूप कई बार बदला और फिर मुझ से पूछा कि कहो बेटी हमारा गृहस्थ रूप और जटाधारी रूप का अवलोकन एक है या अन्तर है ? मैंने कहा आपके स्वरूपों शक्ल एक जैसी प्रतिपादित होती है। देखिए वात्सल्य निधि श्री प्रभु जी अपने बच्चों पर कैसी करूणाकम्पा की है। हम कितने वरिष्ट्तम भाग्य शाली हैं।

कहीं राम देखे मैंनें कहीं श्याम देखे।
प्रभु गोद में मैंने दोनों राम देखे।।

भगवान से साक्षात्कार

सिद्धों के सरदार, सर्व सिद्ध हमारे गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपने श्री मुखार बिन्द से बार–बार चेताया है कि भगवान का साक्षात्कार केवल भगवान की करूणा कृपा से ही सम्भव है। भगवान की कृपा प्राप्त करने के लिए श्रद्धा विश्वास, हृदयकी सरलता, उत्कृष्ट साधना, अत्युत्तम कर्मों का आचरण, व अहंता–ममता–वासना आदि काअभाव इत्यादि तथा किसी सिद्ध गुरु की शरणा गति हो तो प्रभु जी स्वयं प्रकट होकर अपने दर्शनों से भक्त को कृतार्थ कर देते हैं। मगर भक्त में पात्रता का होना भी परमावश्यक है जैसे शेरनी का दूध स्वर्ण पात्र में ही ठहरता है वैसे ही साधकको भी बनना पड़ता है। भक्त शिरोमणि बाबा तुलसीदास जी महाराज ने रा.च.मा. में भगवान श्री राम के श्री मुख से श्री सुग्रीव जी को वर्णित जन मानस के

प्रति निमर्लता का सुन्दर उल्लेख किया है कि:–

निर्मल मन-जन सो मोहि पावा।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

इसके अतिरिक्त एक स्थान पर भगवान श्री राम जी कौल भीलों से कहते हैं, जो बाबा तुलसी दास के ही शब्दों में है कि :–

राम ही केवल प्रेम पिआरा।

जानि लेऊ जो जानन हारा।।

तात्विकी बात यह है कि भगवान केवल भाव के भूखे हैं। सृष्टि के निर्माता को हीरे मोती इत्यादि संसारी वस्तुओं से क्या सार्थकता है ? भावनाशील साधक के कर्म भोगों का भुगतान उसके स्वपन में भी हो जाया करता है। गुरु सत्ता में ही सभी देवी देवताओं का समावेश है। अगर गुरु के थपेड़े नहीं खाए तो गहरा शक्तिपात हो जाने पर भी साधक अपनी साधना से भटक सकता है। लेकिन समाधि की पराकाष्ठा पा जाने पर योगी के समस्त संस्कारों का क्षय हो जाता है, चाहे पापों का पहाड़ ही क्यों न हो।

यह विद्या किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होती है, जिसके जान लेने से और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। यही उपदेश हमने (श्री प्रभु जी ने) कुरुक्षेत्र के ज्योतिसर मैदान में श्रीकृष्ण भगवान के रूप में अर्जुन को दिया था कि हे अर्जुन :–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपह तमश्नामि प्रयतात्मन:।। 9/26

इसीलिए सद्गुरु देव की शरणागति आवश्यक है। जो साधक गुरुदेव और भगवान में समता रखता है उसकी रक्षा का भार करूणा निधि स्वयं वहन करते हैं। उसे मीरा बाई व भक्त प्रहलाद की तरह अपनी कृपा से भक्ति प्रेम रस में सराबोर कर देते हैं, जो भगवान के साक्षात्कार का मार्ग है।

गुरुदेव जय जय, सद्गुरु जय जय।
अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय।।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

बौद्ध योगाचार्य बुद्धघोष और उनका विशुद्धि मार्ग

डा. श्री बालमुकुन्द, प्रवक्ता (हिन्दी) सेण्ट एण्ड्रयूज कॉलेज, गोरखपुर

यह एक सार्वभौम और चिरंतन सत्य है कि योग से निरन्तर मानव जीवन अपनी तेजस्विता और अस्मिता को निखारते हुए दिव्यानन्द लोक में पहुँचता रहा है और उसकी (योग की) यह अक्षुण्ण मात्रा जनमानस की कन्दराओं में प्रविष्ट हो सदा एक अनुकूल और मनोरम मार्ग का निर्धारण करती रहेगी। आचार्य पतंजलि कृत योग-दर्शन वह दिव्य चक्षु है जो विविध धर्मों और दर्शनों में भी अपनी सहज गति और प्रवेश रखता है।

आचार्य बुद्धघोष अपने युग के एक महान बौद्ध योगाचार्य थे जिन्होंने त्रिपिटकों की व्याख्या प्रस्तुत की। इनका विशुद्धि मार्ग (विसुद्धि मग्ग) बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्धयोग परक ग्रंथ है, जिसमें योग के स्वरूप तथा उसके महत्व का प्रतिपादन किया गया है। शील, समाधि, और प्रज्ञा इसके मुख्य विषय हैं।

विशुद्धि मार्ग के प्रारम्भ में यह कहा गया है- एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में विचरण कर रहे थे कि किसी देव पुत्र ने उनके समीप आकर उनसे प्रश्न पूछा-

अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटता पजा।

तं तं गोतम पुच्छामि का इमं विजटये जटंति।

अन्दर भी उलझन है, बाहर भी उलझन है। यह जनता उलझन में जकड़ी हुई है। अतः हे गौतम ! मैं तुमसे पूछता हूँ- कौन इस उलझन को सुलझा सकता है ? इसके उत्तर में भगवान ने दूसरी गाथा कही-

सीले पतिट्ठायनरो सपञ्ञो चित्तं पञ्ञञ्च भावये।

आतापी निपक भिक्खु सो इमं विजटये जटन्ति।

अर्थात् शील में प्रतिष्ठित होकर प्रज्ञावन मनुष्य जब समाधि और प्रज्ञा की भावना करता है, तो इस प्रकार उद्योगी और ज्ञानवान भिक्षु होते हुए वह उस उलझन को सुलझा देता है।

भगवान बुद्ध के उक्त उत्तर के आधार पर आचार्य बुद्धघोष ने योगपरक एक क्रमबद्ध ग्रन्थ की रचना की जिसका नाम विशुद्धि मार्ग है।

आचार्य बुद्धघोष के अनुसार विशुद्धि का अर्थ है- सर्व मल रहित,अत्यन्त परिशुद्ध निर्वाण और मार्ग का अर्थ है- प्राप्ति का उपाय। इस प्रकार सर्व मल रहित, अत्यन्त परिशुद्ध, निर्वाण की प्राप्ति का उपाय विशुद्धि मार्ग है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल 23 परिच्छेद हैं। प्रथम दो परिच्छेदों में शील या सदाचार का वर्जन है। 3 से 13 परिच्छेदों में समाधि भावना का निर्देशन है। 14 से 23 परिच्छेदों में प्रज्ञा का विवेचन है।

प्रथम परिच्छेद आचार्य ने शील क्या है? शील को किस अर्थ में ग्रहण किया जाना चाहिए। शील के लक्षण, सार, स्वरूप और आसन कारण क्या हैं? शील का सुपरिणाम क्या है? शील कितने प्रकार का है। शील का मैला होना क्या है ? शील का निर्मल होना क्या है ? आदि प्रश्नों पर विचार किया है।

साधारण अर्थ में सदाचार ही शील है। सदाचार सम्बन्धी अनेक नियम बताये गये हैं। गृहस्थ श्रमण और भिक्षु के लिए शील की अलग-अलग व्यवस्था है। इन्हें गृहस्थशील, श्रामणेरशील और भिक्षुशील की संज्ञा दी जाती है। मनुष्य के आचरणों के द्वारा नैतिक नियम प्रतिबिम्बित होते हैं। आचरणों का प्रकटीकरण तीन कर्मों द्वारा होता है –

(1). काय कर्म (2). वाक् कर्म (3). मनो कर्म। इसी प्रकार कर्मों के भी मोटे तौर पर दो भेद किये जाते हैं – (1). कुशल कर्म (2). अकुशल कर्म। अकुशल काय कर्म तीन प्रकार के माने गये हैं। (1). प्राणघात (2). चोरी (3). व्यभिचार। अकुशल वाक् कर्म के चार भेद हैं – (1). झूठ बोलना (2). चुगली करना (3). कटुवचन (4). निरर्थक बोलना। अकुशल मनोकर्म के तीन भेद हैं– (1). विषम लोभ (2). विद्वेष (3). मिथ्या दृष्टि। इन दस अकुशल कर्मों के विलोम रूप कुशल कर्म कहलाते हैं।

भगवान बुद्ध ने शीलों के अनेक सुपरिणाम बतलाये हैं। किसी अवसर पर अपने शिष्यों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था – शील आध्यात्मिक जीवन का आधार है। जिस चित्त मल को गंगा, यमुना, अचिरवती (राप्ती), सरयू, मही और महानदी जैसी नदियों की जलराशि भी धो नहीं सकती, उसे शील रूपी जल ही धो सकता है। मालती आदि पुष्पों की सुगन्धि केवल अनुवात में फैलती है, लेकिन शील की सुगन्धि न केवल अनुवात में अपितु प्रतिवात में और चारों ओर फैलती है। शील स्वर्गारोहण के लिए सोपान है और निर्वाण रूपी नगर का प्रवेश द्वार है।

आचार्य बुद्धघोष ने साधकों के लिए पवित्र जीवन सम्बन्धी अभ्यासों के भी उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इसके लिए उन्होंने तेरह अवधूत व्रतों का उल्लेख किया है, यथा– श्मशान, गली इत्यादि स्थानों से बिना चीथड़ों से बने चीवरों को ही धारण करने का व्रत, भिक्षा से प्राप्त भोजन से ही जीवनयापन करने का व्रत, एक ही आसन पर भोजन करने का व्रत, एकही पात्र में सभी प्रकार के भोजन ग्रहण करने का व्रत, वृक्ष के नीचे रहने का व्रत, खुले मैदान में वास करने का व्रत, श्मशान में वास करने का व्रत, बिना लेटे समय बिताने का व्रत आदि।

शील या सदाचार के पश्चात् आचार्य दूसरी ऊँची भूमि का वर्णन करते हैं। वह अवस्था है– समाधि। विशुद्धिमार्ग में समाधि के तीन भेद बताये गये हैं – (1). क्षणिक समाधि, (2). उपचार समाधि, (3). अर्पणा समाधि। क्षणिक समाधि किंचित् कुशल चित्त में उत्पन्न होती है। ध्यानावस्था के पहले उत्पन्न होने वाली समाधि उपचार समाधि कहलाती है। अर्पणा समाधि पूर्ण समाधि है, जो ध्यानावस्था में उत्पन्न होती है। इनमें प्रथम कोटि की समाधि क्षणभर के लिए होती है। द्वितीय कोटि की समाधि कुछ देर के लिये ठहरती है, तृतीय कोटि की समाधि अधिक देर तक स्थिर रहती है।

विशुद्धि मार्ग के अनुसार चित्त की तीन भूमिका मानी गयी है – कुशल, अकुशल और अव्याकृत। कुशल चित्त में उत्पन्न होने वाली एकाग्रता को वहाँ समाधि की संज्ञा दी गई है – 'कुसल चित्तेकग्गता समाधि।' किसी एक आलम्बन (विषय) में चित्त और चैतसिक धर्मों को

समान और सम्यक् रूप से बिना विक्षेप और विकीर्णता के रखना ही चित्त की समाधि या समाधान (सम्यक आधान) कहलाता है।

प्रतिकूल परिस्थितियों में चित्त में विक्षेप आने पर समाधि मलिन हो जाती है। वही अनुकूल अवस्था प्राप्त करने पर उन्नत अवस्था में पहुँचकर स्वच्छ हो जाती है। आचार्य बुद्धघोष के अनुसार समाधि मार्ग में आने वाली दस बाधाओं (दस पलिबोध) से मुक्त होकर योगाभ्यासी को साधना करनी चाहिए। वे बाधाएँ हैं – कुल या परिवार, लाभ, शिष्यगण, कर्म, मार्ग, जाति–बन्धु, रोग, ग्रन्थ (रचना) और ऋद्धि। उन्होंने कर्म स्थानों (समाधि के आलम्बनों) को ग्रहण करने का निर्देश दिया है। इसके चालीस विषय माने गये हैं –

1. दस कसिण (कृत्स्न-ध्यान विशेष)– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, नील, पीत, लोहित, अवदात, आलोक और आकाश।

2. दस घृणोत्पादक अशुभ अवस्थायें – (मृत शरीर की दस घृणोत्पादक अवस्थायें)– ऊर्ध्व मातक (फूला हुआ शरीर), विनीलक नीले रंग में परिणत शरीर, विपुब्बक– पीव बहता शरीर, विच्छिकदक– छिद्र पड़ा शरीर विक्लायितक जानवरों द्वारा टुकड़े कर यत्र–तत्र फेंका शरीर, हतविक्षिप्तक – हथियार से टुकड़े कर फेंका शरीर, अस्थिक– अस्थिपंजर में परिवर्तित शरीर।

3. दस अनुस्मृतियाँ – बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, संघानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति, देवतानुस्मृति, मरणानुस्मृति, कायगतानुस्मृति, आनापानस्मृति, उपशमानुस्मृति।

4. चार ब्रह्म विहार – मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा जैसी चार भावनायें चार ब्रह्म विहार कहलाती हैं।

5. चार आरूप्य – अरूपता सम्बन्धी ध्यानों का विवरण– आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, अकिंचन्यायतन तथा नव संज्ञानासंज्ञायतन।

6. आहार में प्रतिकूल संज्ञा – भोजन के जीर्ण या अजीर्ण होने पर उत्पन्न परिणामों आदि के सम्बन्ध में ज्ञान होना चाहिए। इस भावना के कारण योगाभ्यासी में रस तृष्णा कम होगी और मन समाधि की ओर अग्रसर होगा।

7. चतुर्धातु व्यवस्थान हैं। इन्हीं के अनुसार योगाभ्यासी को शरीर के स्वभाव का निर्धारण करना चाहिए।

गुरु की खोज – आचार्य बुद्धघोष ने विशुद्धि मार्ग में इस बात का उल्लेख किया है कि पलिबोधों (बाधाओं) से मुक्त होने के पश्चात् योगाभ्यासी को योग्य गुरु की खोज कर लेनी चाहिए। यदि योग्य गुरु विहार में मिल जाए तो वहीं जाकर उससे दीक्षा लेनी चाहिए। गुरु का दर्शन प्राप्त होने पर तत्काल अपने उद्देश्य से अवगत नहीं कराना चाहिए, अपितु उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए। उनकी सेवा में निरन्तर रत रहना चाहिए। गुरु के प्रति

पूर्ण समर्पण भाव रखकर हर प्रकार से उनके प्रति अपनी विश्वास पात्रता सिद्ध करनी चाहिए।

भगवान बुद्ध ने अपने प्रथम उपदेश में शिष्यों से कहा था कि प्रवजितों को दो अन्तों का सेवन नहीं करना चाहिए– 1. सुखविलास 2. कायपीड़न। इन्हें चार आर्य सत्यों (दुःख दुःख समुदय, दुःख निरोध और दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा) को समझकर आर्य अष्टाँगिक मार्ग की शरण में आना चाहिए। इनकी शरण में आने पर सभी दुःखों से मुक्ति मिल जाती है और निर्वाण की प्राप्ति होती है। ये मार्ग शील, समाधि और प्रज्ञा के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। शील के अन्तर्गत सम्यक् वचन, सम्यक् कमन्ति तथा सम्यक् आजीविका हैं। सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि, समाधि के अन्तर्गत हैं। सम्यक् दृष्टि तथा सम्यक् संकल्प प्रज्ञा के अन्तर्गत हैं।

अविद्या से घिरा प्राणी नाना दुःखों को झेलता है। इसके मूल में तृष्णा है। प्रज्ञा नामक तीसरी भूमि से अन्तर्गत आचार्य बुद्धघोष ने स्कन्ध, आयतन, धातु, इन्द्रिय, सत्य तथा प्रतीत्य समुत्पाद के सम्बन्ध में विचार किया है। अन्त में प्रज्ञा के सुपरिणाम का विवेचन कर निर्वाण प्राप्ति के लोकोत्तर फल की ओर निर्दिष्ट किया है। इन सबका विवेचन अलग–अलग सोपानों में पातंजल योग–दर्शन को दृष्टि में रखकर किया जा सकता है।

एक दिन की बात –

दादूदयाल संत नहीं बने थे, तब एक दिन की बात है कि जब वे अपनी दुकान पर बैठे हुए हिसाब करने में इतने तल्लीन थे कि द्वार पर आये अपने गुरुजी को भी निहारने की फुरसत उनको नहीं थी। बाहर मूसलाधार पानी पड़ रहा था। अचानक दादूदयाल की दृष्टि बाहर की ओर गई। वे तुरंत दौड़े और गुरुजी को छाती से लगा लिया। उनकी आँखों में आंसू आ गये। कहने लगे, क्षमा कीजिए, गुरुदेव ! अपने सांसारिक कार्यों में इतना अधिक डूब गया था कि आपको निहार नहीं पाया।

गुरु ने स्नेह से कहा, " मैं थोड़े समयसे ही यहां खड़ा हूँ, परंतु प्रभु तो अनंतकाल से तेरे दरवाजे पर खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं कि तू उन्हें कब बुलाता है।" उस दिन से दादू के मन में बड़ा परिवर्तन आ गया। उन्होंने दुनियादारी त्याग दी।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

एकतत्त्वाभ्यास

ब्रह्मचारी श्री वासुदेव शर्मा

एक क्षण के लिए भी आयु का नाश होना बन्द नहीं होता, क्योंकि शरीर अनित्य है। अतएव बुद्धिमान मनुष्य को विचारना चाहिए कि नित्य वस्तु कौन सी है ? उस नित्य को जान लेना ही सबसे बड़ा ज्ञान है। नित्य वस्तु आत्मा–परमात्मा है। आत्मा–परमात्मा का ज्ञान जब हो जाता है, फिर भी जीवात्मा उस नित्य को केवल ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता। यहां यह समझ लेना चाहिए कि ज्ञान और साक्षात्कार में बहुत अन्तर है। किसी वस्तु व विषय का ज्ञान योगी को भी हो सकता है। किन्तु प्रत्येक वस्तु व विषय का साक्षात्कार केवल विज्ञानवान् योगी को होता है। ज्ञान और प्रयोग का आधार मन, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियां हैं। वशीकार, तथा साक्षात्कार का आधार चित्त, आत्म–चेतना–आत्म–ज्योत्स्ना हैं। फिर वशीकार, संयम तथा साक्षात्कार का परस्पर गूढ़ सम्बन्ध है। वशीकार से ही साक्षात्कार होता है। संयम से ही प्रत्यक्षीकरण होता है। ईश्वर–परमात्मा का साक्षात्कार केवल कुशल योगीगण ही करता है। क्योंकि :–

साक्षात्पश्यति परमात्मानं योगीश्वरः।

(इति श्रुति)

जब तक योगाभ्यास द्वारा साधक आत्मा शुद्ध नहीं कर लेता तब तक उस नित्य परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर सकता। आत्मा ईश्वर, सद्गुरु की भक्ति द्वारा शुद्ध होता है तथा वह प्रेम भक्ति पाना बिना योगान्क्रनुष्ठान किये असम्भव है। क्योंकि जिस गति को मनुष्य योग के द्वारा प्राप्त कर लेता है वह गति तीव्र यज्ञ, स्वाध्याय तथा व्रत्तादियों से प्राप्त करना असम्भव है।

न च तीव्रेण तपसा न, स्वाध्यायेर्नचेज्यया गतिं।

गन्तुंद्विजाः शक्ता योगात्, संप्राप्नुवन्तियाम्।।

क्योंकि योगाग्नि अशेष पाप–पंजर को जल्दी ही जला देती है अतः निर्मल ज्ञान को पाकर निर्वाण पद को पा लेता है।

योगग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पाप पंजरम्,

प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाण मृच्छति।

जब तक योग विधि द्वारा साधक चित्त शुद्ध नहीं कर पाता तब तक योग साधक को एकतत्त्वाभ्यास में रत रहना अति आवश्यक है। क्योंकि अन्तरायों तथा चित्त विक्षेपों के साथियों का नितान्त अभाव अति आवश्यक है तथा इनका निवारण एकतत्त्वाभ्यास द्वारा ही सम्भव है और अन्य कोई रास्ता नहीं है। ईश्वर प्रणिधान इसी ही अभ्यास से होता है। एकतत्त्वाभ्यास = एक+तत्+त्व+अभ्यास। ' एक ' का अर्थ है केवल, एकमात्र। ' तत् ' का अर्थ है वह वा उसका।

त्वं का अर्थ है पन वा पना। अभ्यास = अभि + आस। अभि का अर्थ है सब ओर, सब प्रकार, सर्वांगीण। आस का अर्थ है विन्यास, संसृजन, साधना।

एकनिष्ठ होकर तत्त्व (तत्परता) के साथ सर्वांगीण साध विन्यास अथवा निरन्तर साधना के द्वारा 9 अन्तरायों तथा 5 विक्षेप सह भुवों (चित्त विक्षेप के साथी) का निराकरण किया जाता है। 9 अन्तरायें भगवान पतंजलि जी ने एक सूत्र में इस प्रकार पिरोयी हैं :–

व्याधि-स्त्यान-संशय-प्रमादालस्या-विरति-भ्रान्तिदर्शन-अलब्धभूमि कत्वा नव स्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेअन्तरायाः। – योग–दर्शन 1.30

रोग, आत्म हेयता, सन्देह, लापरवाही, सुस्ती, अरुचि, कुछ– का– कुछ समझना जड़ न जमना, चंचलता, यह 9 चित्त विक्षेप हैं जो अन्तरायें कहलाते हैं। दूसरे सूत्र में विक्षेपसह भुवों को बताया है। वह इस प्रकार है :–

दुःख दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व, श्वास-प्रश्वासा विक्षेपसहभुवः। – 1.3

इन्द्रियों का विकार युक्त रहना, मानसिक विकलता, अंगों का हिलना, श्वास, प्रश्वास यह 5 विक्षेपों के साक्षी हैं। यह जो अन्तराय गिनाये गये हैं, वे सब चित्त विक्षेप हैं। यह सब अन्तराय चित्त विक्षेप से उत्पन्न होते हैं। जहां चित्त विक्षेप नहीं होता वहां ये अन्तराय नहीं होते हैं।

ध्यानपूर्वक देखें तो 9 अन्तरायों तथा 5 विक्षेप सह भुवों का मूलकारण एक ही है। प्रथम और मूल अन्तराय है व्याधि। व्याधि = वि + आ + धि। ' आधि ' का अर्थ है मनोव्यथा, मानसिक पीड़ा, चिन्ता। ' व्याधि ' का अर्थ है रोग, बीमारी। चिन्ता और रोग का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। चिन्ता से रोग उत्पन्न होते हैं तो रोग से चिन्तायें उत्पन्न होती हैं। चिंता और रोग के समन्वय का नाम ही व्याधि है।

इस सम्बन्ध में यह समझ लेना आवश्यक है कि चिन्ता क्या वस्तु है। चिन्तन करना मस्तिष्क का सहज, स्वाभाविक कार्य है। न केवल स्वस्थ और स्वच्छ मस्तिष्क, अपितु अस्वस्थ और विकृत मस्तिष्क भी सदैव चिंतन करता रहता है। चिन्तन की तीन धारायें हैं :– 1. अनिष्ट चिन्तन अथवा चिन्ता, 2. इष्ट चिन्तन, 3. उपाय चिन्तन अथवा तत्त्वचिन्तन।

अनिष्ट चिन्तन अथवा चिन्ता से आन्तरिक व्याधियां उत्पन्न होती हैं। व्याधियों से शारीरिक रोग फूट पड़ते हैं।

इष्ट चिन्तन से आन्तरिक प्रफुल्लता प्रमुदित रहती है और परिणाम स्वरूप समस्त आधियाँ व्याधियाँ निराकृत रहती हैं और सम्पूर्ण जीवन–संस्थान पुष्पवत् सुविकसित अथवा विकासोन्मुख रहता है।

इष्ट चिन्तन से युक्त आत्मा ही उपाय–चिन्तन अथवा तत्त्व चिन्तन करता है। उपाय–चिन्तन अथवा तत्त्व चिन्तन एक ही बात है। तत्त्व–चिन्तन से उपायबोध अथवा तत्त्वबोध होता है। बोध से कार्यान्वितता वा साधना का मार्ग प्रशस्त होता है। साधना से सिद्धि होती है।

व्याधि मूल अन्तराय है। व्याधि का परिणाम है आत्म हेयता। आत्म हेयता का परिणाम है संशय, अविश्वास, संशय का परिणाम है प्रमाद, लापरवाही। प्रमाद का परिणाम है आलस्य,

सुस्ती। आलस्य का परिणाम है अरुचि। अरुचि का परिणाम है– भ्रान्ति दर्शन, भ्रम। भ्रम का परिणाम है टिक कर निरन्तर कार्य न करना।

दृढ़–भूमि न होने का परिणाम है चंचलता। जिसका परिणाम दु:ख है। दु:ख का परिणाम है दौर्मनस्य, विषाद। विषाद का परिणाम, आसन असिद्धि। आसन–असिद्धि का परिणाम श्वास प्रश्वास की विषमता, वि–स–मता, अस्थिरता।

एकतत्त्वाभ्यास एक–तत्त्व–अभ्यास। यह शब्द " एकतत्त्वाभ्यास " है ' एक तत्त्व–चिन्तन ' नहीं। ' एक ' का अर्थ है केवल एक–मात्र, एक। ' तत्त्व ' का अर्थ है तत्–त्व–तत्पना, केवल वही। ' अभ्यास ' का अर्थ है अभि + आस, स्वभाव, आदत। योगी को अपना ऐसा अभ्यास, स्वभाव अथवा संस्कार बना लेना चाहिए कि जब किस काम को करना, अपना सारा ध्यान, अपनी सम्पूर्ण चेतना, अपने सम्पूर्ण चिन्तन और अपनी सम्पूर्ण चेष्टा को सम्पूर्णतया उसी एक विषय में केन्द्रित कर देना। अन्य किसी विषय का विचार भी उस समय तक न आने देना, जब तक कि लिया हुआ कार्य व विषय समाप्त व सम्पूर्ण न हो जाए।

सब कामों से निवृत्त होकर यदि आप सोने जा रहे हैं तो चारपाई या तख्त की ओर जाते हुए आप की चाल और ईश्वर चिन्तन में सिवाय सुन्दर सुगढ़ प्यारी निद्रा के और कुछ न हो। तख्त पर लेटने के उपरान्त आँखें बन्द करके प्रभु की गोद में, निद्रा माता की गोद में नितान्त निश्चिन्त और निश्चेष्ट होकर सम्पूर्ण एकाग्रता के साथ सुषुप्ति में निमग्न होने की ईश्वर मधुर कल्पना तथा प्रात: कितने बजे उठना है यह संकल्प कीजिए। आप देखेंगे कि नियत समय तक बिना किसी व्यवधान के आप गहरी निद्रा का आनन्द लेंगे।

यदि हम शौचालय में हैं तो अपने शरीर में से मल–मूत्र निराकरण के अतिरिक्त अन्य कोई विचार व चेष्टा न कीजिए। स्नान करते समय स्नान करने में ही पूर्णतया एकाग्र हो जाईये। प्राणायाम के समय प्राणायाम पर अपने सम्पूर्ण ध्यान को केन्द्रित करके कार्य कीजिए। स्वाध्याय कर रहे हैं तो पढ़े जा रहे ग्रन्थ के पन्नों में ही अपनी पूर्ण चेतना को केन्द्रित कीजिए। लिख रहे हैं तो लेख के विषय से असम्बद्ध विषयों के विचार सर्वथा वर्जित रखिये। परमेश्वर, सद्गुरु का ध्यान कर रहे हैं तो परमेश्वर गुरु के ध्यान में अन्य किसी के ध्यान को प्रविष्ट न होने दीजिए।

आप जिस समय जो कोई भी अच्छा काम करें, उस समय उसी से सम्बद्ध विचार तथा क्रिया करें। इसी का नाम एकतत्त्वाभ्यास है। एकतत्त्वाभ्यास के पक जाने पर आप देखेंगे कि आप व्याधि के सर्वथा मुक्त हो गये हैं। व्याधि से मुक्त होने पर सत्यान के स्थान में तत्परता आजाएगी। तत्परता के आने पर संशय समाप्त हो जाएगा, और उसके स्थान में आत्म–विश्वास स्थापित हो जाएगा। आत्म–विश्वास से प्रमाद का निराकरण हो जाता है। और चुस्ती–फुर्ती की स्थापना हो जाती है। चुस्ती–फुर्ती से आलस्य का नाश हो जाता है और अभिरुचि जागृत होती है, अभिरुचि की जागृति से अविरति का लोप होता है। अविरति, अरुचि के लोप से बोध जागरित होता है। बोध के जागरण से भ्रान्तिदर्शन का उन्मूलन होता है, जिसके परिणाम स्वरूप अलब्ध भूमिकत्व का हनन होता है। अलब्ध भूमिकत्व के हनन से अनवस्थितत्व, चंचलता का निराकरण होता है। चंचलता के निराकरण से दु:ख की हानि होती। दु:ख की हानि से दौर्मनस्य, विषाद का विनाश होता है। विषाद के विनाश से अङ्ग मेजयत्व का निराकरण हो जाता है। अङ्ग मेजयत्व के निराकरण से श्वास प्रश्वास की समता सिद्ध होती है। इस प्रकार विक्षेपों तथा विक्षेप

सहभुवों के निराकरण से चित्त की चंचलता दूर होगी। चित्त को चंचलता रहित करके, सुख में मैत्री की, दु:ख में करुणा की, पुण्य में हर्ष की और पाप (अपुण्य) में अपेक्षा की भावना की साधना से योगी का चित्त सदा निर्मल और सुप्रसन्न रहता है। चित्त के स्थिर, निर्मल और सुप्रसन्न रहने से योगी सतत्, सन्तत, निरन्तर योग युक्त रहता है। जिस साधक का चित्त जब तक चंचल है तब तक वह योग का अधिकारी नहीं बनता।

एकतत्त्वाभ्यास साधना द्वारा चित्त की वृत्तियाँ क्षय होकर चित्त स्वयमेव शान्त हो जाता है। मनुष्य मात्र को एकतत्त्वाभ्यास करना चाहिए। योगी के लिए सारा संसार उसका अपना है। न केवल मनुष्य मात्र अपितु प्राणीमात्र उसका आत्मीय होता है। विक्षेप रहित, निर्मलचित्त योगी की शुभकामनायें निसन्देह दु:खियों को सुखी और पापियों को पुण्यात्मा बनाने की क्षमता रखती है। निर्मल चित्त से ही सच्चा ईश्वर प्राणिधान होता है। ईश्वर प्राणिधान पूर्वक प्रणव के जप से उस आत्म–चेतना की जागृति होकर नितान्त समस्त अन्तरायों का अभाव अथवा निराकरण हो जाता है। जिससे चित्त–प्रसादन होता, उत्तम योग ,योगामृतपान योगी करता है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

2022 – नववर्ष के अभिनन्दन में

(त्रिभाषा-रचित (संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी)

पद्यात्मिका – स्वरचनायें

– द्वारका प्रसाद शर्मा

(संस्कृत भाषायाम्)

कालोऽयं समुपाहरत्यनुदिनमस्मत्प्रियं वाऽप्रियम्,
संयोगं कुरुते तथा विदधते क्लेशान् वियोगात्मकान्।
जानीते न ततो वराक मनुजो कालस्य रचनामिमाम्,
एवं वर्षमतीतमप्यपगतमहो कालप्रभावे जगत्।। 1।।

कालातीतो न भवितुमर्हो शंकरान्नापरोऽन्यः,
तेषामेवाश्रितानां भवतु यदि भवेदामास्पदं नो।
संसारे येऽनुरक्ताः कथमिह न ते दुःखदग्धा भवेयुः
संलब्धेषु कलेवरेषु द्वन्द्वविषये को यो न शेषायितः।। 2।।

वर्षे नवीने समुपागतेऽस्मिन्,
नूनं भवन्तमप्यभिनन्दयेऽहम्।
तथा प्रार्थयेऽहं भवतां कृते च,
नीरूक् – वपुर्मानमयञ्च जीवनम्।। 3।।

(हिन्दी)

यही काल जो प्रिय वा अप्रिय दिन–प्रतिदिन ले आता है,
संयोगों को यही कराता और प्रियों से बिछुड़ाता है।
कालजयी की संरचना को मनुज बिचारा नहीं जानता,
कालबद्ध यह सकल विश्व है, ऐसे यह गत वर्ष व्यतीता।।1।।
कालजयी परमेश्वर के बिन, कोई अन्य न हो पाया,
उनका आश्रय परमाश्रय है, जिनसे सब कुछ सबने पाया।
संसारी जन तज उनको ही, जीवन दुश्चिन्तामय जीते हैं,
धरा नुज तन कैसे सोचें, द्वन्द्व क्लेश से हम रीते हैं।।2।।

नये वर्ष के इस शुभारम्भ में मैं,
शब्दाभिनन्दन बस कर रहा हूँ।
नीरोग तन युत, धन–मान दोनों,
जीवन रहे प्रार्थना कर रहा हूँ।।3।।

May the New Year be a Blissful one

(This is in English Verse of Sanskrit Verses)

It's the Time that conveys the news, be those pleasant or the unpleasant ones,
Its that very Time causing unions & the disunions from our dearest ones.
The poor human being does never perceive the staut of the Omnipotent time.
Tried with the Time is the entire Universe, hence the year last has gone past again once.

None else is the Victor of Time other than the Lord of the Universe,
This resort is only the greatest resort which bestows upon ever to every one.
A temporal life shrouded with worries lead the worldly people bereft of him,
Being in human form how can one think to carry on one's own life without worry or shun.

On this auspicious beginning of the New Year
I pray my heartfelt homage to you.
May God also shower His Blessings
Of Health with wealth, name and fame unto you.

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

योगासन और उनके लाभ

ब्रह्मचारी श्री वीरेन्द्रस्वरूप, श्री सिद्धगुफा सवाई

गत वर्ष सिद्धयोग के जून अङ्क में ' ताड़ासन ' का परिचय कराया गया था और प्रयास किया गया था कि उसका स्वरूप एवं ताड़ासन की उपादेयता पाठक वृन्द समझ लें। योगासनों के वर्गीकरण (अप्रैल 79 अङ्क) में ताड़ासन के बाद हस्तपादअंगुष्ठासन है अतः अब यहां पर इसी का क्रमानुसार वर्णन किया जाता है।

हस्तपादअंगुष्ठासन

उपादेयता– यह आसन पृष्ठ, कटि, सक्थि एवं भुजाओं में आकुञ्चन पैदा करके उनकी शक्ति को बढ़ाता है, इन अङ्गों की कोशिकाओं की न्यूक्लिअर पावर बढ़ जाती है।

मोटे कूल्हों और नितम्बों तथा मोटी सक्थियों की चर्बी को हटाकर उन्हें सुडौल बनाता है। पृष्ठ भाग की पार्श्विकाओं में होने वाले वातरोग को दूर कर देता है। पिण्डली एवं सक्थियों में स्थैर्यबल बढ़ाता है।

विधि– काया, ग्रीवा एवं सिर को एक सूत्र में स्थिर रखते हुए खड़े हो जाइये उसके बाद एक हाथ (बायें) को कटि पर अंगूठे और तर्जनी के बीच के भाग से जमाकर रखिये। अब उसी ओर के पैर को दूसरे पैर के घुटने तक ऊपर उठा लीजिए। अब आप दूसरे हाथ से उठे हुए पैर का अंगूठा पकड़ लीजिये और शरीर को स्थिर रखते हुए एक पैर (दायें) पर खड़े हुए, उठाये हुए पैर के अंगूठे को पकड़े धरातल के समतल में सामने सीधा फैला दीजिये। इसी स्थिति में 10 सेकैण्ड रुके रहिये और फिर छोड़ दीजिए। इसी क्रिया को तीन बार कीजिए, पुनः दूसरे पैर और हाथ से इसी क्रिया को कीजिये। यही हस्तपादअंगुष्ठासन कहलाता है।

बन्ध–हस्तपादअंगुष्ठासन करते समय मूलबन्ध एवं उड्डीयानबन्ध लगा रहता है। जिससे प्राणों पर नियन्त्रण करने का प्रथम पाठ आरम्भ हो जाता है।

व्याख्या– जिस समय हम एकाएक पैर को सामने फैलाते हैं उस समय हमारे शरीर में ऐड़ी से लेकर सिर की चोटी तक एक शक्ति की तरंग रीढ़ की हड्डी से होती हुई निरन्तर चलती हुई दिखाई देती है और वह धीरे–धीरे पूरे शरीर में व्याप्त होती चली जाती है। यह शक्ति–तरंग कोशिकाओं के अन्दर घुसकर उसमें सुप्त पड़े हुए न्यूक्लिअस को जगाती है। इस शक्तितरंग से जागृत न्यूक्लिअस अपना चयापचय का कार्य अपनी पूरी क्षमता के साथ अपनी कोशिका के द्वारा करना आरम्भ कर देता है जिससे शुद्ध रक्त का संचार एवं दूषित रक्त–शोधन के लिए हृदय की ओर चल पड़ता है। कोशिका के स्वस्थ रहने पर , उनके जागृत रहने पर शरीर में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आती। कोशिकाओं के सुप्त रहने पर या मर जाने पर ही शरीर का ह्रास होना आरम्भ हो जाता है।

पाद अंगुष्ठासन से पैर के, कटि के एवं पीठ के वातरोग उनकी कोशिकाओं के जागृत

हो जाने से निकल जाते हैं। मलाशयों की कोशिकायें जागृत हो जाती हैं और वह अपना मल विसर्जन कार्य सुचारु रूप से करती हैं जिससे कब्जी नहीं होने पाती।

त्रिकोणासन

इस आसन को करते समय आसनाभ्यासी त्रिभुज की आकृति में खड़ा रहता है, इसलिए इसआसन को त्रिकोणासन कहते हैं।

उपादेयता– इस आसन का सम्यक प्रकार से किया हुआ अभ्यास ब्रह्मचर्य में सहायक होता है। पैर, कटि एवं पृष्ठ–भाग के बात–रोगों को दूर कर देता है।

विधि– सर्व प्रथम ' समकाय–शिरोग्रीव ' की विधि से खड़े हो जाइये फिर दोनों पैरों के बीच में 3 फुट की दूरी रखते हुए खड़े हो जाइये। इसके बाद पेट की वायु बाहर निकालते जाइये, पेट को भीतर सिकोड़ते हुए नाभि के ऊपर हाथ से भी गति की दिशा में हथेली से ऊपर की ओर हल्का धक्का देते जाइये। जब पेट की पूरी वायु निकल जाय तब एक पैर को घुटने पर से मोड़ते हुए उसी ओर झुक जाइये तथा उस ओर के हाथ को उस ओर के पैर के पंजे पर जमा दीजिये एवं दूसरा हाथ सिर के ऊपर से फैले हुए पैर की समसूत्रता में ले आइये। इसी स्थिति में 5 सेकैण्ड रुके रहकर इसी क्रिया को दूसरे हाथ और पैर से करिये। यही क्रिया 5 बार दुहराइये। यही त्रिकोणासन कहलाता है।

बन्ध– इस आसन के अभ्यास में उड्डीयान बन्ध का ही विशेष अभ्यास महत्वपूर्ण है।

व्याख्या– जिस समय हम अपने हाथ की हथेलियों से नाभिमण्डल को उर्ध्व गति देते हैं तब वीर्यकोष में इकट्ठा हुआ वीर्य प्राणों के साथ मिलकर शरीर में व्याप्त होने लगता है और जब हम त्रिकोणासन की स्थिति में होते हैं उस समय वह वीर्य अपनी व्याप्ति को स्थिरता प्रदान करता है। वीर्य के शरीर में व्यापक हो जाने पर मन में एकाग्रता के धर्म आने लगते हैं। मन की एकाग्रता ही योग की जननी है।

उत्कटासन

उपादेयता– इस आसन के द्वारा सक्थि और पिण्डली की मांसपेशियों पर काफी तनाव पड़ता है जिससे वे रस–रक्त को पर्याप्त ग्रहण एवं विसर्जन कर लेती हैं जिससे शक्तिशाली बन जाती हैं।

पेट के नलों को इसी आसन में स्थित होकर उठाया जाता है और नोली क्रिया को किया जाता है।

विधि– समसूत्रता में खड़े होकर हाथों को सक्थियों पर जमाकर कटिभाग को धीरे–धीरे इसप्रकार पीछे ले जाते हैं मानो कुर्सी पर बैठने जा रहे हों। सक्थि और पिण्डली आपस में मिलें नहीं इतनी दूरी को रखते हुए कुर्सी की आकृति बना लेते हैं। इसे उत्कटासन कहते हैं।

व्याख्या– इस आसन से कटि, घुटना, पिण्डली एवं गुल्फों की मांसपेशियों पर गहरा तनाव पड़ता है जिससे वहां के दूषित मल निकल जाते हैं और शुद्ध रस–रक्त का नवीन संचार हो जाता है।

बन्ध– इस आसन का आधार उड्डीयान बन्ध है, उड्डीयान बन्ध के ही आधार पर यह

आसन स्थिर रहता है।

पाद हस्तासन

यह आसन अभ्यास क्रम से तीन प्रकार से किया जाता है वह विधि में बतलायेंगे।

उपादेयता– इस आसन के अभ्यास से पृष्ठ भाग के सभी स्नायु–मण्डल में आकुंचन या प्रतिकुंचन पैदा होता है जिससे स्नायुमण्डल से मल निकल जाते हैं और नया रक्त उनमें भर जाता है जिससे वह स्वस्थ रहते हैं। पाचन क्रिया ठीक रहती है, भूख भी खूब लगने लगती है, कब्जी दूर होती है। पेट की व्यर्थ चर्बी हट जाती है और शरीर सुगठित होता है।

विधि– सर्व प्रथम ' समकाय शिरोग्रीव ' की विधि से खड़े हो जाइये उसके बाद पेट की वायु नासिका द्वारा धीरे–धीरे बाहर निकाल दीजिये और साथ–साथ पेट को अन्दर सिकोड़ते जाइये, जब पेट की हवा निकाल दें तब सामने झुक कर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ लीजिये किन्तु घुटना झुकने न पाये। अब मस्तक को घुटने से लगा दीजिये यह प्रथम प्रकार का पाद हस्तासन हुआ, इसे खड़ा पश्चिमोत्तान आसन भी कहते हैं। इससे वह सभी लाभ मिलते हैं जो पश्चिमोत्तान आसन के अभ्यास से मिला करता है।

दूसरी विधि– बिल्कुल सीधे खड़े हो जाइये। अब दोनों पैरों के बीच में ढाई फुट की दूरी रखिये। अब श्वांस को नासिकारन्ध्रों से बाहर निकाल कर सामने की ओर झुकते हुए अपने दोनों हाथों की हथेलियों को दोनों पैरों के पंजों के साथ (बाहरी ओर) मिलाते हुए जमीन में चिपका दीजिए यह मुख्य रूप से पाद हस्तासन कहलाता है। इसके द्वारा भी पश्चिमोत्तान आसन के सदृश लाभ होते हैं।

तीसरी विधि– पादहस्तासन की तीसरी विधि यह है कि द्वितीय विधि की ही तरह पैरों के बीच में ढाई फुट की दूरी रखते हुए खड़े हो जाते हैं और सामने की ओर झुकते हुए पैरों के पंजों से ढाई फुट दूर सामने आगे का ओर हाथ की हथेलियों को जमा देते हैं और गर्दन को उठा कर सामने दूर दृष्टि रखते हैं। यह हुआ पादहस्तासन का तीसरा प्रकार। इसे उष्ट्रासन भी कहते हैं। इसके भी सभी लाभ पूर्ववत् हैं।

बन्ध– इन तीनों प्रकार के पादहस्तासनों में उड्डीयान बन्ध लगाया जाता है। उड्डीयान बन्ध लगा देने पर मूलबन्ध अपने आप लगा रहता है।

व्याख्या– जिस समय उड्डीयान बन्ध लगा कर सामने की ओर झुकते हैं उस समय स्नायु मण्डल जो पैर में स्थित हैं उनमें कम्पन पैदा हो जाता है और वह कम्पन ऊपर की ओर उठते–उठते पिण्डली, सक्थि, कटि से होता हुआ पार्श्विकाओं में प्रवेश करता हुआ मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है यह कम्पन स्नायुमण्डल को तीव्रगति से कम्पित करके उनके मलों को उनसे पृथक कर देता है। निर्मल हुआ स्नायु–मण्डल शुद्ध रक्त एवं रसों से युक्त हो जाता है, उनमें एक नवीनता आ जाती है उनमें ताजगी आ जाती है और अभ्यासी शरीर के हल्केपन की अनुभूति करता है, उसको अपना शरीर हल्का दिखाई देता है। पूरे शरीर में स्फूर्ति फैली रहती है।

महावीरासन

उपादेयता– इस आसन का नाम पूर्ण सामर्थ्यों से युक्त श्री हनुमान जी के स्वरूप को

बतलाने वाला है। श्री हनुमन्त जी अपने ब्रह्मचर्य बलके लिए प्रसिद्ध हैं। आसनाभ्यासी इसआसन का अभ्यास करते हुए श्री हनुमान जी के स्वरूप का ध्यान करता है। जो जिसका ध्यान करता है वह उसी को प्राप्त होता है क्योंकि यह नियम है कि–

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रता:।

भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।

(गीता 9/25)

अर्थात् जो जिसका ध्यान, पूजन करता है वह उसी को प्राप्त होता है जो देवताओं का ध्यान करते हैं वह देवता बन जाते हैं और जो पितरों का ध्यान पूजन करते हैं वह पितरों को प्राप्त होते हैं। जो भूत–प्रेतों का ध्यान–पूजन करते हैं वह भूत–प्रेतों को प्राप्त होते हैं। इसी नियम से इस आसन का अभ्यासी श्री हनुमान जी के स्वरूप का ध्यान करता है। श्री हनुमान जी का ध्यान करने से ये ब्रह्मचर्य के निधान हैं अत: साधक को ब्रह्मचर्य बल नियमित मिल जाता है। ब्रह्मचर्य की बहुत बड़ी महिमा है। हमारे आचार्यों ने शास्त्रों में स्पष्टत: लिखा है देखिये भगवान सदाशिव मां पार्वती से क्या कह रहे हैं –

सिद्धेबिंदौ महायत्ने किं, न सिद्धयति पार्वती।

ईशत्वं यत्प्रसादेन ममापि, दुर्लभं भवेत्।।

(शिवसंहिता)

अर्थात् अत्यन्त प्रयत्न करके जिसने वीर्य को जीत लिया वह अपने सभी कार्य सिद्ध कर सकता है उसके लिए कोई कार्य ऐसा नहीं है जो वह न कर सके मुझे जो दुर्लभ ईशत्व की प्राप्ति हुई है उसका कारण हे पार्वती ! बिन्दु जय ब्रह्मचर्य ही है। अत: ब्रह्मचर्य की इच्छा करने वालों को इस आसन का अभ्यास करते रहना चाहिए।

विधि– ' समकायशिरोग्रीव: ' के नियम से खड़े होने के बाद एक पैर आगे जितना बढ़ा कर रख सकते हैं उससे थोड़ा कम आगे बढ़ा कर रख दीजिये। अब पैर के पंजे को पृथ्वी पर जमाते हुए घुटने पर से नीचे को झुक जाइये इस समय अगले पैर की ऐड़ी थोड़ी जमीन से ऊपर उठ जायेगी और पिछले पैर की अंगुलियाँ एवं थोड़ा–थोड़ा पंजा जमीन से स्पर्श करता रहेगा। ऐड़ी पूरी–पूरी उठ जायेगी। अब अगले पैर वाला हाथ आगे और पिछले पैर वाला हाथ पीछे अर्थात् यदि बाँया पैर आगे है तो बाँया हाथ भी आगे और दांया हाथ पीछे की ओर फैला दीजिए, अब आगे वाले हाथ की कुहनी पर से 120 अंश के कोण पर मोड़ दीजिये और उतना ही कलाई से हथेली को मोड़ दीजिये और अपनी दृष्टि अंगुली के शीर्ष भाग पर रखिये। पीछे वाले हाथ को कोहनी पर से 160 अंश के कोण पर मोड़ दीजिये और कलाई से हथेली को भी उतना मोड़ दीजिये। अब पंजे के बल से शरीर में हल्का–हल्का उछाल देते हुए ' मैं ' हनुमान हूँ और मेरे हाथों पर पहाड़ और गदा है इस वजन को लिये हुए मैं उड़ता हुआ जा रहा हूँ। ऐसा ध्यान करें। यही महावीर आसन है।

बन्ध– मूलबन्ध और उड्डीयानबन्ध स्वत: ही लगा रहता है जिससे ब्रह्मचर्य बल बढ़ता है।

व्याख्या– इस आसन में वीरभाव का ध्यान होने से उत्साह बढ़ता है हृदय अपनी पूरीगति के साथ कार्य करता है जिससे रक्त–शोधन विशेष रूप से होता है। पूरे शरीर का व्यायाम हो जाता है। सभी कोशिकाओं और उनके न्यूक्लि अस के अन्दर जागृति पैदा हो जाती है और उनको नया जीवन मिलता है।

(क्रमशः)

गुरुजी योग बांटने आया

अशोक दिग्विजय

दोहा:– स्वर भी तेरा, सुर भी तेरा, तेरा ही गुण गान।
मैं तो धौंकनी लौहार की, सांस लेत बिन प्राण।।
तर्ज :– श्याम चूड़ी बेचने आया.....
धोती कुर्ते का पहनावा–गुरु जी योग बांटने आया।
सिद्धगुफा मन भाया–प्रभु रामलाल की छाया।।
अलूपुर जन्म था पाया–भक्ति का रंग सवाया।
माँ चरती का जाया–गुरु जी योग बांटने आया।। धोती.....
गुरु मंत्र खूब जपाया–जीवन तत्व रोज कराया।
गीता पाठ पढ़ाया–गुरु जी योग बांटने आया।। धोती.....
कश्मीर से कन्या कुमारी–लल्ला कर लो तपस्या भारी।
योग का डंका बजाया–गुरु जी योग बांटने आया।। धोती.....
ध्यान धारणा बनाओ–योग समाधी लगाओ।
अष्टांग योग समझाया–गुरुजी योग बांटने आया।। धोती.....
कितनों के संकट हारे–कितने भव सागर तारे।
कितनों का प्राण लौटाया–गुरुजी योग बांटने आया।। धोती.....
हे योगेश्वर अन्तर्यामी–हितेश्वर करुणा स्वामी।
हे योगी राज तेरी माया–गुरुजी योग बांटने आया।। धोती.....
ऐसे कर्म नहीं थे मेरे–साधक धर्म नहीं थे मेरे।
जो अधम ऋषिकेश अपनाया गुरुजी योग बांटने आया।। धोती.....

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

संयम और शान्ति

अनु राम यादव

प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर अनन्त श्री दादा गुरुदेव एवं सद्‌गुरुदेव जी के युगल कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन एवं सभी आदरणीय भाई–बहनों को सादर जयगुरुदेव ! हमारे आदरणीय एवं वन्दनीय जो परिपक्व साधक है, जो योग साधना की उच्च स्थिति में पहुँचकर पी.एच.डी. की डिग्री हासिल कर चुके हैं, उनकी तो बात ही कुछ निराली है परन्तु जो मेरी तरह योग की छोटी कक्षा के विद्यार्थी है, उनके लिए अपनी अल्पमति के अनुसार टूटे–फूटे शब्दों में कुछ निवेदन करने की धृष्टता कर रहा हूँ।

जीवन गुजर के बाद हमारे लिए जो जरूरी है– वह है " शान्ति "। शान्ति का मूल संयम है। सच्चाई तो यह है कि अशान्त–चित्त वाले एवं असंयमित व्यक्ति का योग में प्रवेश हो ही नहीं सकता। संक्षेप में अगर हम कहें तो संयम भजन है, संयम आराधना है, संयम उपासना एवं साधना है और उसका फल है– शान्ति। अशान्ति वहीं होती है जहां संयम खोता है। संयम एवं मानसिक सन्तुलन प्रायः वे लोग खोते जा रहे हैं जिनके पास भौतिक वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में हैं। यही कारण है कि अधिकतम् आत्म हत्याएँ मध्यम वर्गीय एवं उच्चवर्गीय लोगों में देखी जाती हैं, इसका मुख्य कारण है– असंयमित जीवन। मजदूरों एवं गरीब लोगों में आत्म हत्याएँ प्रायः कम देखने को मिलती हैं।

अनादिकाल से जीव विषयों का कीड़ा बना हुआ है। विषय यानी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। इन पाँच विषयों में विशेष रूप से मनुष्य इतना आसक्त हो चुका है कि तनिक–तनिक चीजों के लिए वह अपना संयम खो बैठता है जिसके कारण वह स्वयं अशान्त होता है और दूसरों को भी अशान्त करता रहता है। अगर हम इन पाँचों विषय के प्रति कमर कस कर अनासक्त नहीं होंगे तो कल्याण की बात तो दूर रही हम अपना जीवन ही गँवा बैठेंगे। शब्द विषय के प्रति आसक्त होकर हिरण, स्पर्श यानी कामवासना के प्रति आसक्त होकर हाथी, रूप विषय में आसक्त होकर कीट–पतंग, गन्ध विषय में आसक्त होकर भँवरा एवं रस यानी स्वाद विषय में आसक्त होकर मछली अपनी जान गँवा बैठती है। मात्र एक–एक विषय के प्रति आसक्त हो कर ये पाँचों जीव अपनी जान खो देते हैं। भला उन मनुष्यों का क्या हाल होगा जो सभी पाँचों विषयों में आसक्त हैं। साधक अपनी साधना में सफल तभी हो सकता है जब दृढ़ संकल्प के साथ इन पाँचों विषयों के प्रति अनासक्त होने का निरन्तर अभ्यास करे।

संसार, समाज जैसा है वैसा रहेगा, हमें स्वयं को सुधारना है। हममें सुधार तभी होगा जब हमारा जीवन संयमित होगा। देखने में संयम, सुनने में संयम, बोलने में संयम, खाने–पीने में संयम, मिलने जुलने में संयम, कर्म में संयम, व्यवहार में संयम, मन पर संयम, संग्रह में संयम, खर्च में संयम आदि–आदि सब में संयम की जरूरत है। भौतिक वस्तुओं के संग्रह में

इंसान पागल सा हो रहा है। अपने को धनी एवं बड़ा बनाने की होड़ लगी हुई है। उसे धन चाहिए चाहे भले ही दूसरे की लाश पर से ही क्यों न गुजरना पड़े। अपनी जेब भरने के लिए इंसान दूसरे का हक छीनने एवं गला घोटने में तनिक भी संकोच नहीं कर रहा है। भली प्रकार से यह समझ लेना चाहिए कि भौतिकता में डूबा हुआ इंसान अशान्ति के अलावा कुछ नहीं पायेगा। आवश्यकता सबकी पूरी होती हैं परन्तु इच्छाएँ आज तक न किसी की पूरी हुई हैं और न कभी पूरी होंगी। जीवन यात्रा के लिए या यूँ कहें कि शरीर निर्वाह या जीवन गुजर के लिए मुख्य आवश्यकता क्या है– पेट में डालने के लिए थोड़ा अन्न, तन ढकने के लिए कुछ मोटा–महीन कपड़ा और सोने के लिए थोड़ी सी जगह। सच पूछिए तो यही संसार से पाना चाहिए। हमें तो भक्त सुदामा के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। इतनी विपन्नता के बाद भी उन्होंने अपना संयम नहीं खोया और ईश्वर की भक्ति में तल्लीम रहे। जब सुदामा का श्रीकृष्ण से मिलन हुआ और श्रीकृष्ण ने पूछा मित्र ! जीवन कैसे चल रहा है तब सुदामा ने उत्तर दिया– हे वासुदेव ! आप तो वैभव–सम्पन्न राजा हैं परन्तु मेरा भी व्यवसाय अच्छा चल रहा है, मैं दुखी बिल्कुल नहीं हूँ। श्री कृष्ण ने पूछा मित्र ! आप का व्यवसाय क्या है ? सुदामा ने सहज भाव से जवाब दिया– ध्यान, साधना, भगवत् भजन ही मेरा व्यवसाय है। खूब मन लगता है और बहुत आनन्द आता है। कृष्ण जी ने बात घुमाया और कहा– आप के घर में भाभी–बच्चे तो तकलीफ उठा रहे हैं। धन्य हैं सुदामा, उन्होंने उत्तर दिया– हे कृष्ण ! मेरे परिवार में कोई दुख–तकलीफ नहीं है। यह तो मैं आज आपके मुंह से सुन रहा हूँ कि मेरा परिवार दुखी है। यह है जीवन की ऊँचाई।

हमारा जो असली काम है वह है– आत्म संयम! बोलने में संयम न होने से अधिकतम कलह एवं अशान्ति होती है। वाक् संयम अत्यन्त आवश्यक है। सारे अनर्थों की जड़ अहंकार है। यह मीठा नहीं बोलने देता। संत जन ऐसा कहते हैं कि जो मीठा नहीं बोल सकता वह संसार का सबसे दरिद्र इंसान है। हो सकता है, हमारे पास भौतिक वस्तुएँ न हों, अतः हम दूसरे को नहीं दे सकते परन्तु अगर हम गूँगे नहीं हैं, तो दूसरों को मीठी वाणी तो दे सकते हैं। सुबह उठते ही कुछ लोग ऐसा जहर उगल देते हैं कि पूरा दिन घर का वातावरण विषाक्त बना रहता है। द्रौपदी की वाणी ही महाभारत का कारण बनी। इसका कारण है – अहंकार। अहंकार और कामना जितना घटेंगे, मन उतना ही शीतल होगा और मन जब शीतल होगा तब मीठी वाणी निकलेगी। इन्द्रिय और मन का संयम जिसमें है उसे शाश्वत शान्ति मिलती है। जीवन में गहरी शान्ति ही जीवन की सबसे बड़ी सफलता एवं जीवन की सबसे बड़ी ऊँचाई है। सुबह उठते ही हमें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि आज मैं किसी से कटु नहीं बोलूँगा, अधिक नहीं खाऊँगा, सहनशील एवं विनम्र रहूँगा, गन्दी धारणा मन में नहीं लाऊँगा। " आज से मैं केवल मीठा ही बोलूँगा " हमारा केवल यह एक दृढ़ संकल्प हमारा जीवन बदल सकता है।

अगर हम ध्यान से देखें तो ऐसा लगता है मानव जब से होश संभालता है तब से वह निरन्तर किसी खोज में लगा हुआ प्रतीत होता है। इंसान का दुश्मन है– दुख ! वह दुख नहीं चाहता अर्थात् वह हमेशा सुख की तलाश में लगा रहता है। सन्तों का कहना है कि जैसे सूर्य का अंश होने के कारण जलती हुई ज्वाला ऊपर की ओर जाती है, सागर का अंश होने के कारण जल यानी नदियाँ सागर की तरफ ही भागती नजर आती हैं उसी प्रकार आनन्द स्वरूप ईश्वर का अंश होने के कारण जीव निरन्तर सुख एवं आनन्द की खोज में स्वाभाविक रूप से निरन्तर

लगा रहता है। मनुष्य बहुत बड़ी भूल कर बैठता है, सुख–आनन्द वहां तलाशता है, जहाँ वह है ही नहीं। इंसान सुख–सुविधा में तलाशता है जब कि स्थाई सुख, सुविधा यानी सांसारिक वस्तुओं में कभी नहीं मिल सकता। सुख का असली स्थान है– शान्ति । सुख शान्ति में ही मिलेगा अन्यत्र कहीं नहीं। अगर मन हमारा बिल्कुल शान्त है, हमारे सामने जो भी रूखा–सूखा आ जाए, हम भर पेट खा लेंगे। टूटी चारपाई पर बिना बिस्तर के सुख की नींद सो लेंगे; परन्तु इसके विपरीत अगर हमारा मन अशान्त है, हमारे सामने छप्पन भोग ही क्यों न रखा हो, गले के नीचे नहीं उतरेगा। वातानुकूलित कमरे में मखमली गद्दे पर करवटें बदलते रात बीत जायेगी, नींद नहीं आयेगी। धन दौलत से कभी स्थाई सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। सुख मिलेगा– आत्म शान्ति एवं आत्म संतोष से। शान्ति का आधार है– सहनशीलता एवं विनम्रता। "सहन शीलता आध्यात्मिक साधना की कसौटी है।" जो जितना सहनशील होगा, उसका मन उतना ही शान्त होगा। और मन जितना शान्त होगा, वह उतना ही सुखी होगा। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है–

सात द्वीप नवखण्ड में, तीन लोक जगमाहिं।
तुलसी शान्ति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं।।

शान्ति के अतिरिक्त स्थाई सुख सांसारिक सुविधाओं में कभी नहीं मिल सकता। अच्छे–अच्छे सुविधा सम्पन्न पूँजीपति मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजाघर एवं तीर्थ स्थानों में क्यों भटक रहे हैं ? मात्र उसी मन की शांति के लिए। प्रायः वे यही कहते रहते हैं कि हमारे पास सब कुछ भौतिक साधन उपलब्ध हैं परन्तु मन शान्त नहीं है। अब प्रश्न उठता है शान्ति मिलेगी कैसे ? भगवान श्री कृष्ण ने शान्ति प्राप्त करने का उपाय गीता में बताया है। उन्होंने बताया है– अहंता, ममता, कामना एवं स्पृहा इन चारों से अगर वैराग्य हो जाय अर्थात् इन चारों से अनासक्त हो जाए तो वह शान्ति प्राप्त कर सकता है। इसका विस्तृत उल्लेख गीता के दूसरे अध्याय के इकहत्तरवें श्लोक में देखा जा सकता है।

एक बार एक जिज्ञासु ने एक संत से पूछा महाराज ! ईश्वर का स्वरूप क्या है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? संत ने उत्तर दिया– बेटा ! ईश्वर सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है। अगर तुम्हारा मन सदैव आनन्दित है और मन में परम शान्ति है तो यही ईश्वर की प्राप्ति समझो। इसके अतिरिक्त किसी स्थूल शरीर वाले ईश्वर के पीछे भटकना व्यर्थ है। सन्त की इस वाणी की पुष्टि गीता के चौदहवें अध्याय के सत्ताइसवें श्लोक में भगवान श्री कृष्ण ने स्पष्ट कर दी। उन्होंने कहा है कि अखण्ड एवं एकरस आनन्द का आश्रम मैं ही हूँ। गीता के चौथे अध्याय के उन्तालीसवें श्लोक में एवं अध्याय पाँच के बारहवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने परम् शान्ति को ही भगवत् स्वरूप अर्थात् अपना स्वरूप बताया है। सन्त जनों का यही मत है कि देवालयों एवं तीर्थ स्थानों में जिस ईश्वर की हम तलाश कर रहे हैं, वह परम शान्ति ही है। इस विषय में एक कथा आती है–

एक बार भगवान श्री नारायण इंसान को उसके उपयोग की सारी सांसारिक वस्तुएँ प्रदान कर रहे थे। लक्ष्मी जी वहीं बैठी, बड़े ध्यान से देख रही थीं। भगवान से सब कुछ पाकर मनुष्य चलता बना। इसके बाद लक्ष्मी जी ने भगवान से कहा– स्वामी ! मनुष्य जब अभाव में

होता है तभी आप को याद करता है। आप ने तो सब कुछ उसे दे दिया, अब आप को याद करने को कौन कहे आप की तरफ मुड़कर देखेगा भी नहीं। लक्ष्मी जी की यह बात सुनकर भगवान ने एक अभिनय किया। उन्होंने झट से अपना एक पैर जमीन पर ऐसे रखा जैसे उस मनुष्य की कोई वस्तु गिर गई हो और उसे उन्होंने अपने पैर के नीचे छिपा लिया हो। लक्ष्मी जी ने पूछा भगवन ! मनुष्य की कोई वस्तु गिर गई है क्या ? भगवान ने कहा– हाँ देवी , उसकी एक बहुत कीमती वस्तु गिर गई है। लक्ष्मी जी ने कहा जब उसकी कोई वस्तु गिर गई है तो उसे बुलाकर दे दीजिए, आप ने पैर से छिपा क्यों लिया ? भगवान ने उत्तर दिया देवी ! अभी आप कह रही थीं कि अब वह मुड़कर मेरी तरफ देखेगा भी नहीं। वह मनुष्य इसी वस्तु के रूप में देवालयों, तीर्थ स्थानों और सन्त महात्माओं के पास मुझे ही खोजता फिरेगा। लक्ष्मी जी ने कहा स्वामी ! अगर वस्तु इतनी कीमती है तो मैं उसे देखना चाहती हूँ। भगवान ने अपना पैर जब उठाया तो उसके नीचे वह कीमती वस्तु थी– " शान्ति " । भगवान ने कहा देवी ! मनुष्य के पास सब होगा परन्तु मन की शान्ति नहीं होगी। इसी शान्ति के लिए वह बार–बार मेरे पास आयेगा।

भगवान श्री कृष्ण ने गीता के तेरहवें अध्याय के आठवें श्लोक में सर्व साधारण के लिए एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त की बात कह दी कि अगर मनुष्य, जन्म, मरण, बुढ़ापा आदि में दुखों को और अपने अन्दर के दोषों को बार–बार देखना शुरू कर दें तो उसके जीवन में बहुत हद तक सुधार हो सकता है और वह कल्याण–पथ का सच्चा पथिक बन सकता है। अतः हम सभी साधकों को यह सिद्धान्त सदैव याद रखना चाहिए और उसे अपने आचरण में ढालना चाहिए। सांसारिक प्राणी पदार्थों एवं शरीर में जब हमें दुखों का ज्ञान हो जायेगा तब वैराग्य होगा, जब वैराग्य होगा तब मुमुक्षा होगी, जब मुमुक्षा होगी तब श्रद्धा होगी, जब श्रद्धा होगी तब साधना में सावधानी होगी, जब साधना में सावधानी होगी तब–तब मन–इन्द्रियों का संयम होगा, जब मन–इन्द्रियों का संयम होगा तब बहिर्मुखता का त्याग एवं अन्तर्मुखता की वृत्ति होगी, जब अन्तर्मुखता की वृत्ति होगी तब शान्ति की प्राप्ति होगी, जब शान्ति की प्राप्ति होगी तब हर्ष–शोक और राग–द्वेष की सर्वथा निवृत्ति होगी। इसके बाद ही गीता का सर्वमान्य सिद्धान्त " समभाव " की स्थिति प्राप्त होगी। यही मानव जीवन की सार्थकता एवं ऊँचाई है।

एक विचारक ने कहा है कि – " किसी भी कीमत पर शान्ति को खरीद लो। " शान्ति तो कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे पैसे से खरीदा जा सके। कहने का आशय यह है कि हम जीवन में कभी कोई ऐसा कर्म न करें जिससे मन अशान्त हो जाए। सन्त जन कहते हैं– परम् शान्ति ही सुख एवं आनन्द का आधार है, परम् शान्ति ही ईश्वर का परम् धाम है और इसी परम् धाम को ही योग की भाषा में निर्बीज समाधि कहा गया है। यहीं पहुँचकर मनुष्य की दुख से सर्वथा निवृत्ति होती है अर्थात् उसे जन्म–मरण के चक्कर से छुटकारा मिलता है। इसलिए हम सभी साधकों को अपना जीवन संयमशील एवं शान्तिमय बनाये रखने का सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिए।

" हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः "

सादर जय गुरुदेव !

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

महायोगी ऋषि माण्डव्य

डॉ. श्रीमती राज कुमारी त्रिखा, जनकपुरी, नई दिल्ली

योगाभ्यास की उपलब्धियाँ लोकोपयोगी होती हैं। पूर्ण योगी सर्वसमर्थ तथा अनेक ब्रह्माण्डों की सृष्टि का संहार व पालन करने में समर्थ होता है। वह **"कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्"** शक्ति से संपन्न हो जाता है। इसी प्रकार के शक्तिमान थे महायोगी ऋषि माण्डव्य। इनके जीवन की एक ही घटना का उल्लेख योगशक्ति का परिचायक है।

ऋषि माण्डव्य एक ब्राह्मण थे, जो धैर्यवान, धर्मज्ञ, सत्यनिष्ठ एवं परम तपस्वी थे। वे अपने आश्रम के द्वार पर वृक्ष के नीचे भुजाएँ उठाकर, मौन व्रत धारण करके, खड़े होकर उग्र तपस्या करते थे। वे एक महान योगी थे व कालक्रम से तथा साधना की प्रगति द्वारा उनमें प्रचुर योगशक्तियों का विकास होगया था। बहुत समय तक यह ऋषि इसी प्रकार तपस्या करते रहे।

एक दिन इनके आश्रम पर कुछ चोर आये। उनके पास चोरी का माल भी था। बहुत से सैनिक उनका पीछा कर रहे थे। अतः उन चोरों ने चोरी का माल ऋषि के आश्रम में छिपा दिया तथा स्वयं भी वहां छिपकर बैठ गये। तभी राजा की सेना उन चोरों को ढूँढ़ती हुई आश्रम पर आ पहुँची। वहाँ आश्रम के द्वार पर तपस्या में संलग्न ऋषि को देखकर सैनिकों ने पूछा चोर किस रास्ते से गये हैं ? शीघ्र बताइये जिससे हम तीव्र गति से पीछा करके उन्हें पकड़ सकें। परन्तु ऋषि ने तो मौनव्रत धारण किया हुआ था, अतः उन्होंने सैनिकों को कोई उत्तर नहीं दिया। तब सैनिकों ने आश्रम में ही तलाशी लेना शुरू किया। वहां उन्होंने चोरी का माल तथा चोरों को अपनी हिरासत में ले लिया। उनके मन में ऋषि माण्डव्य के प्रति भी सन्देह उत्पन्न हो गया तथा वे उन्हें बांधकर राजा के पास ले गये, और सारी कहानी राजा को सुना दी।

राजा ने उन चोरों के साथ ऋषि को भी प्राण दण्ड की आज्ञा दे दी। राज सैनिकों ने भी ऋषि को नहीं पहचाना तथा शूली पर चढ़ा दिया। परमयोगी व तपस्वी ऋषि माण्डव्य बहुत काल तक शूली पर बैठे रहे तथा भोजन न मिलने पर भी उनकी मृत्यु नहीं हुई। ये प्राण धारण किये रहे और स्मरण मात्र से ही अन्य ऋषियों को अपने पास बुलाने लगे। वे ऋषि शूली की नोक पर तपस्या करने वाले उन महात्मा ऋषि माण्डव्य से बहुत प्रभावित हुए व उन्हें देखकर सन्तप्त भी हुए। वे रात में पक्षियों का रूप धारण करके वहां उड़ते हुए आये तथा यथा शक्ति अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हुए माण्डव्य ऋषि से पूछने लगे– हे ऋषि श्रेष्ठ ! हम सुनना चाहते हैं कि आपने क्या पाप किया है, जिससे आपको शूली पर बैठने का इतना कष्ट भोगना पड़ रहा है ? ऋषि ने उत्तर दिया मैं किस पर दोष लगाऊँ? अन्य किसी ने मेरा कुछ अपराध नहीं किया है।

जब सैनिकों ने उन्हें बहुत दिनों तक शूलीपर बैठे देखा तो राजा के पास यह समाचार यथावत् पहुँचा दिया। सारा वृतान्त सुनकर मन्त्रियों से सलाह करके राजा ने शूली स्थित मुनि को प्रसन्न करने का निश्चय व प्रयास किया। वे बोले, हे मुनि श्रेष्ठ मैंने अज्ञानवश अथवा

मोहवश जो अपराध किया है, उसके लिए आप मुझपर क्रोध न करें। कृपया मुझे क्षमादान दीजिए व प्रसन्न हो जाइये।

सज्जन तो होते ही हैं आशुतोष राजा की विनम्रता से ऋषि माण्डव्य प्रसन्न हो गये। उन्हें शूली से उतारा गया तथा उनके शरीर से शूली को निकालने के लिए खींचा गया, परन्तु वह शूली नहीं निकल सकी। तब शूली को मूलभाग में काट दिया। फिर ऋषि माण्डव्य शूली के अग्रभाग को अपने शरीर के भीतर लिये हुए ही विचरने लगे तथा अपनी उग्र तपस्या के द्वारा अति दुर्लभ पुण्यलोकों पर विजय पाई। शूली के अग्रभाग को अणी कहते हैं। अणी के मूलभाग में धारण किए हुए वे घूमते थे, अत: लोग उन्हें अणीमाण्डव्य ऋषि कहने लगे।

एक बार परमात्मतत्वज्ञ ऋषि माण्डव्य ने विचरते हुए धर्मराज के भवन में जाकर उन्हें दिव्यआसन पर आसीन देखा। वे धर्मराज को उलाहना देते हुए पूछने लगे– ' मैंने अनजाने में कौन सा पाप किया था जिसके फल का यह भोग मुझे इस प्रकार मिल रहा है। शीघ्र बताओ, तथा फिर मेरी तपस्या का बल देखो। ' धर्मराज ने उत्तर दिया ' हे तपोधन ! तुमने बाल्यावस्था में पतिंगों के पूँछ भाग में सींक घुसेड़ दीथी। उसी कर्म के फलस्वरूप उन्हें शूलाग्रभाग की वेदना सहनी पड़ी है। जिस प्रकार थोड़ा सा भी किया हुआ दान, कई गुना फल देने वाला होता है वैसे ही थोड़ा सा अधर्म भी बहुत दु:ख रूपी फल देने वाला होता है "

तब माण्डव्य ने कहा, " जन्म से लेकर बारह वर्ष की आयु तक बालक जो कुछ भी करता है, उसमें अधर्म नहीं होता, क्योंकि उस समय तक बालक को धर्मशास्त्र के आदेश का ज्ञान नहीं हो सकता है। हे धर्मराज ! तुमने थोड़े से अपराध के लिए मुझे बहुत बड़ा दण्ड दिया है। ब्राह्मण का वध सम्पूर्ण प्राणियों के वध से भी अधिक भयंकर होता है, अत: हे धर्मराज तुम मनुष्य होकर शूद्रयोनि में जन्म लोगे। आज से मैं नई धर्ममर्यादा स्थापित करता हूँ चौदह वर्ष तक की आयु तक किसी को पाप नहीं लगेगा। उससे अधिक आयु में ही पाप करने वालों को दोष लगेगा।

इस प्रकार अपनी योगशक्ति व निष्ठा द्वारा ऋषि माण्डव्य ने पाप पुण्य की एक नई व्यवस्था प्रारम्भ कर दी। उनके शाप के कारण ही धर्मराज ने मनुष्य रूप में शूद्रा दासी के गर्भ से जन्म लिया तथा विदुर नाम से विख्यात हुए।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

स्वरूप ज्ञान का महत्व

श्री पं. रामनरेश मिश्र शास्त्री

पुण्य और पाप की उत्पत्ति राग–द्वेष से होती है। पूर्वार्जित एवं प्रस्तुत शरीर संपादित पुण्य–पाप–जनित फलों के भोग चुकने पर भी रागद्वेष के कारण फिर दूसरे नये पुण्य अथवा पाप उपस्थित हो जाया करते हैं। इसलिये पाप और पुण्य के जनक ' राग–द्वेष' ही हैं। इन राग–द्वेष की उत्पत्ति अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान से हुआ करती है। जिस वस्तु में अनुकूलपने का ज्ञान होता है उसमें राग होता है। जिसमें प्रतिकूलपने का ज्ञान होता है उसमें 'द्वेष' होता है। अनुकूल और प्रतिकूलपने की उत्पत्ति भेद ज्ञान से होती है। क्योंकि अनुकूलपना और प्रतिकूलपना उसी वस्तुमें होता है जो अपने से भिन्न होता है। जैसे अपनी स्त्री अथवा अन्य जिस किसी पर अपना पूर्ण ममत्व होता है वह भोजन आदि कार्य करता है और असावधानी या अन्य किसी कारणवश त्रुटि हो जाती है तो उस पर अपनी प्रकृति एवं शक्ति के अनुसार क्रोध का वार करने लग जाता है, परन्तु जब स्वयं अपने हाथ से कुछ काम बिगड़ जाता है, तो क्रोध प्रकट करने की कौन कहे? यह माया–बन्धन में जकड़ा हुआ प्राणी तनिक भी अपने मनमें लज्जा या ग्लानि नहीं मानता कि यह कार्य मेरी मूर्खता के कारण हुआ है। किन्तु उल्टा सोचकर पूर्णतया शांति–भाव को प्राप्त हो जाता है कि " भूल अथवा असावधानी प्राणी मात्र से हुआ करती है इसलिए मुझसे हो गई तो क्या हानि है ? " मतलब यह है राग–द्वेष का प्रयोग उसी वस्तु में किया जाता है जो अपने से भिन्न होती है, यह प्राकृतिक नियम है इस भेद–ज्ञान की निवृत्ति तभी हो सकती है जब अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाए, और अपने स्वरूप का सच्चा ज्ञान तभी होता है जब सद्गुरु के बताये हुए योग–मार्ग की ओर श्रद्धा पूर्वक बढ़ने के लिए सतत् प्रयत्न किया जाय।

संकल्प शक्ति

सब प्रकार की कामनाओं का मूल संकल्प से उत्पन्न होता है। व्रत, नियम, धर्म–सब इसी संकल्प से उत्पन्न होने वाले माने गये हैं।

❋ ❋ ❋

आज हमें जितने महापुरुष दीख पड़ते हैं, जिनके नाम पर संसार फूल चढ़ाता है और जिन्हें अत्यन्त आदर से स्मरण करता है, उनके जीवन को पवित्र और उच्च बनाने का कारण संकल्प शक्ति ही है।

❋ ❋ ❋

आर्यों की ईश्वरीय और जगत की प्राचीनतम पुस्तक 'वेद' में अनेकों सूक्त इसी विषय के आते हैं, जिनमें बारम्बार यही प्रार्थना की गयी है– '**तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**' अर्थात् मेरा यह मन पवित्र संकल्प वाला हो। यथा–

❋ ❋ ❋

जो दिव्य मन जाग्रत अवस्था में दूर निकल जाता है और इसी प्रकार सोने की दशा में भी बहुत दूर चला जाता है, वह दूर जाने वाला ज्योतियों का ज्योति अर्थात् इन्द्रियों का प्रकाशक मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

❋ ❋ ❋

कर्मशील, मनीषी, धीर पुरुष जिसके द्वारा परोपकार क्षेत्र में तथा जीवन–संघर्ष में बड़े बड़े कार्य कर दिखाते है, जो समस्त प्रजाओं (इन्द्रियों) के अन्दर एक अपूर्व पूज्य सत्ता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

●●●

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।।

स्वप्न और जाग्रत अवस्था के दृश्यों को जो पुन: पुन: देखता है और जिसकी व्यवस्था से देखता है उस महान आत्मा को ही जानकर मुमुक्षु तथा धीर वीर पुरुष दुखों से पार हो जाया करता है।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN-2004/14566 सम्पादक : आचार्य म. (डॉ.) रामलाल शर्मा